

## Chapter चौरासी

### कुरुक्षेत्र में ऋषियों के उपदेश

इस अध्याय में सूर्यग्रहण का शुभ अवसर मनाने के लिए ऋषियों का कुरुक्षेत्र में आगमन, ऋषियों द्वारा भगवान् कृष्ण की महिमा का तथा वसुदेव द्वारा उत्साहपूर्वक यज्ञ सम्पन्न किये जाने का वर्णन हुआ है।

सूर्यग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र में कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा जैसी भद्र महिलाओं को भगवान् कृष्ण की रानियों से सान्निध्य प्राप्त करने का सुयोग प्राप्त हुआ। यह देखकर कि भगवान् की प्रियाएँ अपने पति को कितना प्यार करती हैं, वे सभी आश्चर्यचकित थीं। जब स्त्रियाँ परस्पर वार्तालाप कर रही थीं

और पुरुष भी वैसा ही कर रहे थे, तभी नारद, व्यासदेव इत्यादि मुनि भगवान् कृष्ण का दर्शन करने की इच्छा से वहाँ आ पधारे। अनेक राजा तथा अन्य प्रमुख व्यक्ति जो आराम से बैठे थे, जिनमें पाण्डव, कृष्ण तथा बलराम भी सम्मिलित थे। इन ऋषियों को देखते ही सब उठ कर खड़े हो गये। सबों ने उन महात्माओं को शीश, उनकी कुशल-क्षेत्र पूछी और उन्हें आसन, जल इत्यादि प्रदान करके, उनकी पूजा की। तब भगवान् कृष्ण ने कहा, “अब हमारे जीवन सफल हुए, क्योंकि हमने ऋषियों तथा योगेश्वरों का दर्शन पाकर, जीवन-लक्ष्य प्राप्त कर लिया है, जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। किसी तीर्थस्थल का जल तथा देवताओं के अर्चाविग्रह दीर्घकाल के बाद ही किसी को पवित्र बना सकते हैं, किन्तु सन्त मुनिगण तो देखने-मात्र से पवित्र बना देते हैं। जो लोग अपनी पहचान अपने शरीरों के रूप में करते हैं और आप जैसे दिव्य मुनियों का सम्मान नहीं करते, वे गधों के तुल्य हैं।”

भगवान् कृष्ण के मुख से मर्त्य की-सी मुद्रा में इन शब्दों को सुनकर मुनिगण कुछ काल तक मौन तथा मोहग्रस्त रहे। तब उन्होंने कहा, “हमारे प्रभु कितने विचित्र हैं! वे मनुष्य जैसे कार्यकलापों के द्वारा अपनी वास्तविक पहचान को आच्छादित कर देते हैं और ऐसा प्रदर्शित करते हैं कि वे किसी उच्च नियंत्रण के अधीन हैं। निश्चित रूप से उन्होंने सामान्य जनता को प्रबुद्ध करने के उद्देश्य से इस तरह कहा है। उनका ऐसा आचरण अचिन्त्य है।” मुनिगण उनकी महिमा का गान भगवान्, अर्थात् परमात्मा एवं ब्राह्मणों के मित्र तथा आराधक के रूप में करते रहे।

जब मुनिगण उनकी प्रशंसा कर चुके, तो भगवान् कृष्ण ने उन्हें नमस्कार किया और मुनियों ने उनसे अपनी अपनी कुटियों में लौट जाने की अनुमति माँगी। किन्तु तभी वसुदेव आ गये। उन्होंने मुनियों को नमन करने के बाद पूछा, “सकाम कर्म के बन्धन से छूटने के लिए मनुष्य को कौन-से कार्य करने चाहिए?” मुनियों ने उत्तर दिया, “वैदिक यज्ञों के द्वारा भगवान् हरि की पूजा करके आप सकाम कर्म के बन्धन से मुक्त हो सकेंगे।” तब वसुदेव ने मुनियों से उनके पुरोहित बनने की प्रार्थना की और उन्होंने बड़ी सज-धज से वैदिक यज्ञों के सम्पन्न किये जाने की व्यवस्था कराई। बाद में वसुदेव ने इन पुरोहितों को गौवें तथा मूल्यवान आभूषण दान में दिये। यही नहीं, विवाह योग्य ब्राह्मण-कन्याएँ भी भेंट कीं। तत्पश्चात् उन्होंने अवभृथ स्नान अनुष्ठान सम्पन्न किया, जो यज्ञ की समाप्ति का सूचक था और हर एक को, यहाँ तक कि ग्रामीण कुत्तों को भी भोजन कराया। इसके बाद उन्होंने

अपने सम्बन्धियों, विविध राजाओं तथा अन्यो को पर्याप्त भेंटें दीं और वे सभी कृष्ण से विदा लेकर, अपने अपने घर लौट गये।

नन्द महाराज अपने सम्बन्धियों से गहन स्नेह के कारण विदा नहीं हो सके, इसलिए वे कुरुक्षेत्र में यादवों द्वारा सम्मानपूर्वक सेवित होकर तीन मास तक रहते रहे। एक अवसर पर वसुदेव नन्द द्वारा प्रदर्शित गहरी मित्रता का वर्णन करते करते खुल कर अश्रुपात करने लगे। तीन मास बाद नन्द महाराज मथुरा के लिए रवाना हुए, तो सभी यादवों ने उनको प्रेमपूर्वक विदा दी। जब यादवों ने अन्त में देखा कि वर्षाऋतु आने वाली है, तो वे द्वारका लौट गये और राजधानी में जाकर, उन्होंने वहाँ के वासियों को कुरुक्षेत्र की सारी घटनाएँ कह सुनाई।

श्रीशुक उवाच

श्रुत्वा पृथा सुबलपुत्र्यथ याज्ञसेनी  
माधव्यथ क्षितिपपत्य उत स्वगोप्यः ।  
कृष्णोऽखिलात्मनि हरौ प्रणयानुबन्धं  
सर्वा विसिस्म्युरलमश्रुकलाकुलाक्ष्यः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; श्रुत्वा—सुनकर; पृथा—कुन्ती; सुबल-पुत्री—सुबल की पुत्री गान्धारी; अथ—तथा; याज्ञसेनी—द्रौपदी; माधवी—सुभद्रा; अथ—तथा; क्षिति-प—राजाओं की; पत्यः—पत्नियाँ; उत—भी; स्व—( भगवान् कृष्ण की ) निजी; गोप्यः—गोपियाँ; कृष्णो—कृष्ण को; अखिल—सबों के; आत्मनि—आत्मा; हरौ—भगवान् हरि को; प्रणय—प्रेममय; अनुबन्धम्—आसक्ति; सर्वाः—सभी; विसिस्म्युः—विस्मित हुई; अलम्—अत्यधिक; अश्रु-कल—आँसुओं से; आकुल—पूर्ण; अक्ष्यः—नेत्रों वाली।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : पृथा, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा, अन्य राजाओं की पत्नियाँ तथा भगवान् की ग्वालिन सखियाँ सभी जीवों के आत्मा तथा भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति उनकी रानियों के अगाध प्रेम को सुनकर चकित थीं और उनके नेत्रों में आँसू डबडबा आये थे।

तात्पर्य : भद्र महिलाओं की इस गोष्ठी की प्रमुख श्रोता द्रौपदी हैं, क्योंकि श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार द्रौपदी ने ही प्रश्न किया था, जिसका उत्तर कृष्ण की रानियों ने अपनी अपनी कथा सुनाकर दिया। चूँकि पिछले अध्याय में उपस्थित जनों में गान्धारी तथा अन्य स्त्रियों का जिनका नाम यहाँ बताया गया है, उल्लेख नहीं हुआ है, अतएव आचार्य श्रीधर ने यह निष्कर्ष निकाला है कि उन्होंने रानियों की कथाओं को दूसरे के मुखों से सुना होगा। निस्सन्देह द्रौपदी अपने से वयोवृद्ध पृथा तथा गान्धारी की उपस्थिति में इतनी स्वतंत्रता से कभी नहीं बोली होंगी, न ही उन गोपियों के समक्ष जिनकी

मनोवृत्ति द्वारका की रानियों के प्रति संवेदनात्मक नहीं थी। यद्यपि गोपियों के भी आँसू आ गये, किन्तु ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि उन्हें श्रीकृष्ण की लीलाओं का स्मरण हो आया था न कि उन रानियों के प्रति उनको कोई प्रेम-सामीप्य था।

वस्तुतः हमें स्मरण रखना होगा कि आध्यात्मिक स्तर पर सदैव पूर्ण सामंजस्य रहता है। शुद्ध भक्तों में जो विरोध झलकता है, वह संसारी ईर्ष्या तथा लड़ाई-झगड़े जैसा नहीं होता। गोपियों की ईर्ष्या वास्तविकता न होकर मात्र आभास थी, जो कृष्ण के प्रति छल के स्नेह का आनन्दमय प्रतीक थी। श्रील श्रीधर स्वामीपाद स्व-गोप्यः की व्याख्या यह कह कर करते हैं कि गोपियाँ रानियों की स्व-स्वरूप थीं।

इति सम्भाषमाणामु स्त्रीभिः स्त्रीषु नृभिर्नृषु ।

आययुर्मुनयस्तत्र कृष्णरामदिदक्षया ॥ २ ॥

द्वैपायनो नारदश्च च्यवनो देवलोऽसितः ।

विश्वामित्रः शतानन्दो भरद्वाजोऽथ गौतमः ॥ ३ ॥

रामः सशिष्यो भगवान्वसिष्ठो गालवो भृगुः ।

पुलस्त्यः कश्यपोऽत्रिश्च मार्कण्डेयो बृहस्पतिः ॥ ४ ॥

द्वितस्त्रितश्चैकतश्च ब्रह्मपुत्रास्तथाङ्गिराः ।

अगस्त्यो याज्ञवल्क्यश्च वामदेवादयोऽपरे ॥ ५ ॥

#### शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; सम्भाषमाणामु—बात करती हुई; स्त्रीभिः—स्त्रियों के साथ; स्त्रीषु—स्त्रियाँ; नृभिः—पुरुषों के साथ; नृषु—पुरुष; आययुः—आ गये; मुनयः—मुनिगण; तत्र—वहाँ पर; कृष्ण-राम—कृष्ण तथा बलराम का; दिदक्षया—दर्शन करने की इच्छा से; द्वैपायनः—द्वैपायन वेदव्यास; नारदः—नारद; च—तथा; च्यवनः देवलः असितः—च्यवन, देवल तथा असित; विश्वामित्रः शतानन्दः—विश्वामित्र तथा शतानन्द; भरद्वाजः अथ गौतमः—भरद्वाज तथा गौतम; रामः—परशुराम; स—सहित; शिष्यः—उनके शिष्यगण; भगवान्—भगवान्; वसिष्ठः गालवः भृगुः—वसिष्ठ, गालव तथा भृगु; पुलस्त्यः कश्यपः अत्रिः च—पुलस्त्य, कश्यप तथा अत्रि; मार्कण्डेयः बृहस्पतिः—मार्कण्डेय तथा बृहस्पति; द्वितः त्रितः च एकतः च—द्वित, त्रित तथा एकत; ब्रह्म-पुत्राः—ब्रह्मा के पुत्र ( सनक, सनत, सनन्द तथा सनातन ); तथा—और; अङ्गिराः—अंगिरा; अगस्त्यः याज्ञवल्क्यः च—अगस्त्य तथा याज्ञवल्क्य; वामदेव-आदयः—वामदेव इत्यादि; अपरे—अन्य मुनि।

जब स्त्रियाँ स्त्रियों से और पुरुष पुरुषों से परस्पर बातें कर रहे थे, तो अनेक मुनिगण वहाँ आ पधारे। वे सभी के सभी कृष्ण तथा बलराम का दर्शन पाने के लिए उत्सुक थे। इनमें द्वैपायन, नारद, च्यवन, देवल तथा असित, विश्वामित्र, शतानन्द, भरद्वाज तथा गौतम, परशुराम तथा उनके शिष्य, वसिष्ठ, गालव, भृगु, पुलस्त्य तथा कश्यप, अत्रि, मार्कण्डेय तथा बृहस्पति, द्वित, त्रित, एकत तथा चारों कुमार एवं अंगिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य तथा वामदेव सम्मिलित थे।

तान्दृष्ट्वा सहस्रोत्थाय प्रागासीना नृपादयः ।

पाण्डवाः कृष्णरामौ च प्रणेमुर्विश्ववन्दितान् ॥ ६ ॥

#### शब्दार्थ

तान्—उनको; दृष्ट्वा—देखकर; सहसा—तुरन्त; उत्थाय—उठकर; प्राक्—अभी तक; आसीनाः—बैठे हुए; नृप-आदयः—राजा तथा अन्य लोग; पाण्डवाः—पाँचों पाण्डव; कृष्ण-रामौ—कृष्ण तथा बलराम; च—भी; प्रणेमुः—प्रणाम किया; विश्व—विश्व-भर के द्वारा; वन्दितान्—सम्मानितों को।

ज्योंही, उन्होंने मुनियों को आते देखा, सारे राजा तथा अन्य लोग, जो वहाँ बैठे थे, तुरन्त उठ खड़े हुए, जिनमें पाँचों पाण्डव तथा कृष्ण एवं बलराम भी थे। तब सबों ने उन विश्ववन्द्य मुनियों को प्रणाम किया।

तानानर्च्यथा सर्वे सहरामोऽच्युतोऽर्चयत् ।

स्वागतासनपाद्यार्घ्यमाल्यधूपानुलेपनैः ॥ ७ ॥

#### शब्दार्थ

तान्—उनको; आनर्चुः—उन्होंने पूजा की; यथा—उचित रीति से; सर्वे—उन सबों की; सह-राम—बलराम सहित; अच्युतः—तथा कृष्ण ने; अर्चयत्—उनकी पूजा की; स्व-आगत—स्वागत; आसन—बैठने के स्थान; पाद्य—पाँव धोने के लिए जल; अर्घ्य—पीने के लिए जल; माल्य—फूलों की मालाएँ; धूप—अगुरु; अनुलेपनैः—तथा चन्दन-लेप से।

भगवान् कृष्ण, बलराम तथा अन्य राजाओं एवं प्रमुख व्यक्तियों ने उन मुनियों का, सत्कार, आसन, पाद-प्रक्षालन का जल, पीने के लिए जल, फूल-मालाएँ, अगुरु तथा चन्दन-लेप अर्पित करते हुए विधिपूर्वक पूजा की।

उवाच सुखमासीनाम्भगवान्धर्मगुप्तनुः ।

सदसस्तस्य महतो यतवाचोऽनुशृण्वतः ॥ ८ ॥

#### शब्दार्थ

उवाच—कहा; सुखम्—सुखपूर्वक; आसीनान्—बैठे हुएों को; भगवान्—भगवान्; धर्म—धर्म के; गुप्—रक्षा के साधन; तनुः—शरीर वाले; सदसः—सभा में; तस्य—उस; महतः—महात्माओं को; यत—संयमित; वाचः—वाणी वाले; अनुशृण्वतः—ध्यानपूर्वक सुनते हुए।

जब सारे मुनि सुखपूर्वक बैठ गये, तो धर्म की रक्षा के निमित्त दिव्य शरीर धारण करने वाले भगवान् कृष्ण ने उस विराट सभा में उन्हें सम्बोधित किया। हर व्यक्ति ने मौन होकर बड़े ही ध्यान से सुना।

अहो वयं जन्मभृतो लब्धं कात्स्न्येन तत्फलम् ।  
देवानामपि दुष्प्रापं यद्योगेश्वरदर्शनम् ॥ ९ ॥

#### शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच— भगवान् ने कहा; अहो—ओह; वयम्—हम सभी; जन्म-भृतः—सफलतापूर्वक जन्म लेने वाले; लब्धम्—प्राप्त किये हुए; कात्स्न्येन—एकसाथ; तत्—उसका ( जन्म का ); फलम्—फल; देवानाम्—देवताओं के लिए; अपि—भी; दुष्प्रापम्—दुष्प्राप्य; यत्—जो; योग-ईश्वर—योगेश्वर का; दर्शनम्—दर्शन।

भगवान् ने कहा : अब हमारे जीवन निश्चित रूप से सफल हो गये, क्योंकि हमें जीवन का चरम लक्ष्य—महान् योगेश्वरों के दर्शन, जो देवताओं को भी विरले ही मिल पाता है—प्राप्त हो गया है।

तात्पर्य : ब्रह्माण्ड के प्रशासकों के रूप में बड़े बड़े अधिकारों का भोग करते हुए भी देवतागण विरले ही नारद तथा व्यासदेव जैसे मुनियों का दर्शन कर पाते हैं। तो भला पृथ्वी के राजाओं तथा मात्र ग्वालों के लिए उनका दर्शन कर पाना कितना दुर्लभ होगा? यहाँ पर भगवान् कृष्ण समन्तपञ्चक में एकत्रित सारे राजाओं तथा अन्यो को अपना ही मानते हुए उनकी ओर से बोल रहे हैं।

किं स्वल्पतपसां नृणामर्चायां देवचक्षुषाम् ।  
दर्शनस्पर्शनप्रश्नप्रह्वपादार्चनादिकम् ॥ १० ॥

#### शब्दार्थ

किम्—क्या; सु-अल्प—अत्यन्त न्यून; तपसाम्—तपस्या वाले; नृणाम्—मनुष्यों के लिए; अर्चायाम्—मन्दिर के अर्चाविग्रह में; देव—ईश्वर; चक्षुषाम्—जिनका देखना; दर्शन—देखना; स्पर्शन—छूना; प्रश्न—प्रश्न करना; प्रह्व—नमस्कार करना; पाद-अर्चन—पाँवों की पूजा करना; आदिकम्—इत्यादि।

वे लोग जो अधिक तपस्वी नहीं और जो ईश्वर को मन्दिर में उनके अर्चाविग्रह के रूप में ही पहचानते हैं, भला ऐसे लोग अब आपको कैसे देख सकते हैं, छू सकते हैं, आपसे प्रश्न कर सकते हैं, आपको नमस्कार कर सकते हैं, आपके चरणों की पूजा कर सकते हैं और अन्य विधियों से आपकी सेवा कर सकते हैं?

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।  
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥ ११ ॥

#### शब्दार्थ

न—नहीं; हि—निरसन्देह; अप्—जल से; मयानि—निर्मित; तीर्थानि—तीर्थस्थानों को; न—नहीं; देवाः—अर्चाविग्रह; मृत्—मिट्टी; शिला—तथा पत्थर; मयाः—निर्मित; ते—वे; पुनन्ति—पवित्र बनाते हैं; उरु-कालेन—दीर्घकाल के बाद; दर्शनात्—दर्शन करने से; एव—केवल; साधवः—साधुजन।

केवल जलमय स्थान ही असली पवित्र तीर्थस्थान नहीं होते, न ही मिट्टी तथा पत्थर की कोरी

प्रतिमाएँ असली आराध्यदेव हैं। ये किसी को दीर्घकाल के बाद ही पवित्र कर पाते हैं, किन्तु सन्त स्वभाव वाले मुनिजन दर्शन मात्र से पवित्र कर देते हैं।

तात्पर्य : चूँकि भगवान् सर्वोपरि हैं—परमात्मा हैं—अतः उनका कोई भी स्वरूप चाहे वह पत्थर, रंग, ध्वनि या अन्य प्रामाणिक माध्यम से ही प्रकट क्यों न हो, सर्वोच्च दिव्य लोक—गोलोक वृन्दावन—में उनके आदि-रूप से अभिन्न होता है। किन्तु सामान्य देवता सर्वोच्च नहीं होते, वे अति सूक्ष्म आत्माएँ हैं। इस तरह देवताओं के स्वरूप कभी भी उनके समरूप नहीं होते। जिन लोगों में भगवान् के प्रति आध्यात्मिक श्रद्धा का अभाव होता है, उन्हें पवित्र स्थानों में देव-पूजा करने या विधिपूर्वक स्नान करने से केवल सीमित लाभ मिल पाता है।

दूसरी ओर, व्यासदेव, नारद तथा चारों कुमार जैसे महान् वैष्णव सन्त सदैव कृष्णभावनामृत में लीन रहते हैं। इस तरह वे सच्चे सचल तीर्थों के तुल्य होते हैं। क्षण-भर भी उनकी संगति करने से, विशेष रूप से उनके द्वारा भगवान् की महिमा का गान सुनने से, मनुष्य सारे भौतिक बन्धन से उबर सकता है। जैसाकि राजा युधिष्ठिर ने विदुर से कहा है—

*भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो ।*

*तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता ॥*

“हे प्रभु! आप जैसे भक्त साक्षात् तीर्थस्थल हैं। चूँकि आप अपने हृदय में भगवान् को धारण करते हैं, अतएव आप सारे स्थानों को तीर्थों में बदल देते हैं।” ( भागवत १.१३.१० )

नागिनर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका

न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः ।

उपासिता भेदकृतो हरन्त्यघं

विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्तसेवया ॥ १२ ॥

#### शब्दार्थ

न—न तो; अग्निः—अग्नि; न—न तो; सूर्यः—सूर्य; न—न ही; च—तथा; चन्द्र—चन्द्रमा; तारकाः—तथा तारे; न—न तो; भूः—पृथ्वी; जलम्—जल; खम्—आकाश; श्वसनः—श्वास; अथ—अथवा; वाक्—वाणी; मनः—तथा मन; उपासिताः—पूजित; भेद—अन्तर ( उसके तथा अन्य जीवों के बीच ); कृतः—उत्पन्न करने वाले के; हरन्ति—छीन लेते हैं; अघम्—पापों को; विपश्चितः—ज्ञानी लोग; घ्नन्ति—नष्ट कर देते हैं; मुहूर्त—कुछ मिनटों की ही; सेवया—सेवा के द्वारा।

न तो अग्नि के नियामक देवता सूर्य तथा चन्द्रमा, न ही पृथ्वी, तारागण, जल, आकाश, वायु, वाणी तथा मन के अधिष्ठाता देवता अपने उन पूजकों के पापों को हर पाते हैं, जो द्वैत के

दृष्टिकोण से देखने के अभ्यस्त हैं। किन्तु ज्ञानी मुनिजन आदरपूर्वक कुछ ही क्षणों तक भी सेवा किये जाने पर, मनुष्य के पापों को नष्ट कर देते हैं।

तात्पर्य : भगवान् का बचकाना भक्त भगवान् के अर्चाविग्रह को ही दिव्य मानकर अन्य सारी वस्तुओं को भौतिक समझ सकता है—यहाँ तक कि भगवान् के विश्वस्त सेवकों को भी। इतने पर भी चूँकि वह भगवान् विष्णु के परम पद को पहचान लेता है, इसलिए वह देवताओं के भौतिकतावादी पूजकों से श्रेष्ठतर पद पर स्थित होता है, अतएव वह आदर के योग्य है।

इस श्लोक में उस व्यक्ति के लिए जो भक्तिमय जीवन की निम्न अवस्थाओं से ऊपर उठना चाहता है उन्हें उच्च विचार वाले मुनियों की संगति करने की संस्तुति की गई है—यह संगति चाहे प्रत्यक्ष हो या उनके उपदेशों के श्रवण रूप में। एक नवदीक्षित भक्त अबोध प्राणियों के तथा अपने ही शरीर तथा मन के प्रति अधिक स्पष्ट हिंसक पापों से भले ही मुक्त हो, किन्तु जब तक वह भक्ति-मार्ग पर बहुत उन्नत न हो जाये उसे चाहिए कि मिथ्या अहंकार, पूज्य वैष्णवों के प्रति अनादर और कष्ट भोग रहे जीवों के प्रति दया के अभाव जैसे सूक्ष्म दोषों से बचे। अप्रौढ़ता के इन लक्षणों के निवारण का सर्वोत्तम उपाय है, शुद्ध वैष्णवों का सम्मान करना और उनसे उपदेश लेना तथा पतित हो चुके बद्ध जीवों का उद्धार करने के काम में उनका सहयोग करना।

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके

स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः ।

यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचित्-

जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥ १३ ॥

#### शब्दार्थ

यस्य—जिसकी; आत्म—आत्मा के रूप में; बुद्धिः—विचार; कुणपे—शव में; त्रि-धातुके—तीन मूल तत्त्वों से बनी; स्व—निज के रूप में; धीः—विचार; कलत्र-आदिषु—पत्नी इत्यादि में; भौमे—पृथ्वी पर; इज्य—पूज्य के रूप में; धीः—विचार; यत्—जिसका; तीर्थ—तीर्थस्थान के रूप में; बुद्धिः—विचार; सलिले—जल में; न कर्हिचित्—कभी नहीं; जनेषु—लोगों में; अभिज्ञेषु—ज्ञानी; सः—वह; एव—निस्सन्देह; गः—गाय; खरः—या गधा।

जो व्यक्ति कफ, पित्त तथा वायु से बने निष्क्रिय काया को स्वयं मान बैठता है, जो अपनी पत्नी तथा अपने परिवार को स्थायी रूप से अपना मानता है, जो मिट्टी की प्रतिमा या अपनी जन्मभूमि को पूज्य मानता है या जो तीर्थस्थल को केवल जल मानता है, किन्तु आध्यात्मिक ज्ञानियों को अपना ही रूप नहीं मानता, उनसे सम्बन्ध का अनुभव नहीं करता, उनकी पूजा नहीं करता अथवा उनके दर्शन नहीं करता—ऐसा व्यक्ति गाय या गधे के तुल्य है।



तात्पर्य : असली बुद्धि तो आत्म की मिथ्या पहचान से मनुष्य की उन्मुक्तता द्वारा प्रदर्शित होती है।

जैसाकि बृहस्पति संहिता में कहा गया है—

अज्ञात भगवद्धर्मा मन्त्रविज्ञानसंविदः ।

नरास्ते गोखरा ज्ञेया अपि भूपालवन्दिताः ॥

“जो लोग भगवान् की भक्ति के सिद्धान्तों को नहीं जानते, उन्हें गौवें तथा गधे के रूप में जानना चाहिए भले ही वे वैदिक मन्त्रों की पारिभाषिक व्याख्या करने में पटु क्यों न हों और विश्व-नेताओं द्वारा क्यों न पूजे जाते हों।”

द्वितीय श्रेणी के पद की ओर अग्रसर होने वाला अपूर्ण वैष्णव अपनी पहचान उन मुनियों से करता है, जो सत्य आध्यात्मिक मार्ग स्थापित कर चुके होते हैं, भले ही उसमें अब भी शरीर, परिवार इत्यादि के प्रति निम्न भौतिक आसक्ति क्यों न बनी हो। ऐसा भगवद्भक्त न तो मूर्ख गाय होता है, न ही अधिकांश भौतिकतावादियों की तरह अड़ियल गधा। किन्तु सर्वोत्तम वैष्णव वह है, जिसने भगवान् की विशेष कृपा प्राप्त कर ली है और जिसने माया और आसक्ति के बन्धनों से अपने को सर्वथा मुक्त कर लिया है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार भौम-इज्य-धीः शब्द जिसका अर्थ “जो मिट्टी की बनी प्रतिमा को पूज्य मानता है” है, वह मन्दिर में भगवान् के अर्चाविग्रह का नहीं, अपितु देवताओं के अर्चाविग्रहों का सूचक है। इसी तरह यत्-तीर्थ-बुद्धिः सलिले पद जिसका अर्थ “जो तीर्थस्थल को केवल जल मानता है” है, वह गंगा-यमुना जैसी पवित्र नदियों का नहीं, अपितु छोटी-छोटी नदियों का द्योतक है।

श्रीशुक उवाच

निशाम्येत्थं भगवतः कृष्णस्याकुण्ठमेधसः ।

वचो दुरन्वयं विप्रास्तूष्णीमासन्भ्रमद्वियः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; निशाम्य—सुनकर; इत्थम्—ऐसा; भगवतः—भगवान्; कृष्णस्य—कृष्ण का; अकुण्ठ—असीम; मेधसः—बुद्धि; वचः—शब्द; दुरन्वयम्—समझ पाना कठिन; विप्राः—विद्वान् ब्राह्मण; तूष्णीम्—मौन; आसन्—थे; भ्रमत्—चलायमान; धियः—मन वाले।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : असीम ज्ञानी भगवान् कृष्ण से ऐसा अगाध शब्द सुनकर विद्वान्

ब्राह्मण मौन रह गये। उनके मन भ्रमित थे।

चिरं विमृश्य मुनय ईश्वरस्येशितव्यताम् ।

जनसङ्ग्रह इत्यूचुः स्मयन्तस्तं जगद्गुरुम् ॥ १५ ॥

#### शब्दार्थ

चिरम्—कुछ काल तक; विमृश्य—सोचकर; मुनयः—मुनियों ने; ईश्वरस्य—परम नियन्ता के; ईशितव्यताम्—नियंत्रित होने की स्थिति; जन-सङ्ग्रहः—सामान्य लोगों की जागृति; इति—इस तरह ( निष्कर्ष निकालते हुए ); ऊचुः—कहा; स्मयन्तः—हँसते हुए; तम्—उन; जगत्—ब्रह्माण्ड के; गुरुम्—गुरु से।

मुनिगण कुछ समय तक भगवान् के इस आचरण पर विचार करते रहे, जो एक अधीनस्थ जीव के आचरण जैसा लग रहा था। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि वे सामान्य जनों को उपदेश देने के लिए ऐसा अभिनय कर रहे हैं। अतः वे मुस्कराये और जगद्गुरु से इस प्रकार बोले।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने ईशितव्यता शब्द की व्याख्या “किसी के नियन्ता न होने” के द्योतक के रूप में की है अथवा दूसरे शब्दों में, यह कर्म-नियम के अधीन होने अर्थात् कर्म करने और उसके फल को भोगने का द्योतक है। मुनियों को सम्बोधित करते समय भगवान् कृष्ण ने सन्त वैष्णवों को सुनने और उनकी सेवा करने पर बल देने के लिए एक अधीन-जीव की भूमिका अपनायी। भगवान् तो आध्यात्मिक समर्पण के भी परम शिक्षक हैं।

श्रीमुनय ऊचुः

यन्मायया तत्त्वविदुत्तमा वयं

विमोहिता विश्वसृजामधीश्वराः ।

यदीशितव्यायति गूढ ईहया

अहो विचित्रम्भगवद्विचेष्टितम् ॥ १६ ॥

#### शब्दार्थ

श्री-मुनयः ऊचुः—मुनियों ने कहा; यत्—जिसकी; मायया—माया-शक्ति से; तत्त्व—सत्य के; वित्—वेत्ता; उत्तमाः—सर्वश्रेष्ठ; वयम्—हम; विमोहिताः—विचलित; विश्व—ब्रह्माण्ड के; सृजाम्—स्रष्टाओं के; अधीश्वरः—प्रमुख; यत्—जिससे; ईशितव्यायति—( भगवान् ) अपने को उच्चतर नियंत्रण के अधीन मानता है; गूढः—छिपा; ईहया—कार्यों द्वारा; अहो—ओह; विचित्रम्—आश्चर्यजनक; भगवत्—भगवान् का; विचेष्टितम्—कार्य, चेष्टा।

उन महान् मुनियों ने कहा : आपकी माया-शक्ति ने सत्य को सर्वोत्तम ढंग से जानने वाले तथा विश्व के प्रमुख स्रष्टा हम सबों को मोहित कर लिया है। ओह! भगवान् का आचरण कितना आश्चर्यजनक है! वे अपने को मानव जैसे कार्यों से आच्छादित करके अपने को किसी श्रेष्ठ

नियंत्रण के अधीन होने का स्वाँग रच रहे हैं।

तात्पर्य : मुनियों ने भगवान् के कथन को *दुरन्वयम्* अर्थात् अतर्क्य कहा है। यह इस तरह कैसे है उसको यहाँ बतलाया गया है—उनके शब्द तथा कार्य बड़े से बड़े विद्वानों को भी चकित करने वाले हैं जब वे अपने को अपने ही दासों के अधीन मान कर कार्य करते हैं।

अनीह एतद्बहुधैक आत्मना

सृजत्यवत्यत्ति न बध्यते यथा ।

भौमैर्हि भूमिर्बहुनामरूपिणी

अहो विभूम्नश्चरितं विडम्बनम् ॥ १७ ॥

#### शब्दार्थ

अनीहः—बिना चेष्टा किये; एतत्—यह ( ब्रह्माण्ड ); बहुधा—नाना प्रकार; एकः—अकेला; आत्मना—अपने द्वारा; सृजति—उत्पन्न करता है; अवति—पालन करता है; अत्ति—संहार करता है; न बध्यते—बँधता नहीं है; यथा—जिस तरह; भौमैः—पृथ्वी के रूपान्तरों ( विकारों ) से; हि—निस्सन्देह; भूमिः—पृथ्वी; बहु—अनेक; नाम-रूपिणी—नाम तथा रूपों वाली; अहो—ओह; विभूम्नः—सर्वशक्तिमान भगवान् का; चरितम्—कार्यकलाप; विडम्बनम्—बहाना।

निस्सन्देह, सर्वशक्तिमान की मनुष्य जैसी लीलाएँ केवल बहाना हैं। वे बिना प्रयास के ही अपने में से इस रंगबिरंगी सृष्टि को उत्पन्न करते हैं, इसका पालन करते हैं और फिर इसे निगल जाते हैं। आप यह सब बिना बँधे ही करते हैं, जिस तरह पृथ्वी-तत्त्व अपने विविध रूपान्तरों ( विकारों ) में अनेक नाम तथा रूप ग्रहण करती रहती है।

तात्पर्य : एक ही परम पुरुष अपनी पूर्णता में किसी हास के बिना अपने आपको अनेक रूपों में विस्तार करते हैं। वे बिना प्रयास के, किसी पर किसी भी प्रकार से निर्भर हुए बिना ऐसा करते हैं। आत्मप्रसार की यह रहस्यमयी विधि उनके अलावा अन्य किसी की समझ में नहीं आती। किन्तु पृथ्वी तथा उसके विविध विकारों का उदाहरण कुछ न कुछ समता का आभास देता है। यही उदाहरण प्रायः उद्धृत *छांदोग्य उपनिषद्* के इस अंश (६.१) द्वारा भी प्रस्तुत किया जाता है—*वाचारम्भनं विकारो नामध्येयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्*—पृथ्वी के रूपान्तर केवल नाम रखने की शाब्दिक उत्पत्तियाँ हैं, मात्र पृथ्वी ही सत्य है।

श्रील श्रीधर स्वामी का सुझाव है कि *श्रीमद्भागवत* का यह श्लोक कृष्ण पर संभवतः लगाये जा सकने वाले उस आक्षेप का कि “यदि मैं वसुदेव का पुत्र हूँ तो भला मैं इस ब्रह्माण्ड का सृजन, पालन और संहार किस तरह कर सकता हूँ?” का उत्तर है। यह उत्तर *अहो विभूम्नश्चरितं विडम्बनम्* शब्दों

द्वारा दिया गया है, जिसका अर्थ है “आप परम पूर्ण हैं और आपका जन्म तथा आपके कार्यकलाप इस भौतिक जगत में सामान्य पुरुषों के कार्यकलापों के अनुकरण मात्र हैं। आप अपने को किसी उच्चतर नियंत्रण के अधीन होने का केवल स्वाँग भरते हैं।”

अथापि काले स्वजनाभिगुप्तये  
बिभर्षि सत्त्वं खलनिग्रहाय च ।  
स्वलीलया वेदपथं सनातनं  
वर्णाश्रमात्मा पुरुषः परो भवान् ॥ १८ ॥

#### शब्दार्थ

अथ अपि—तो भी; काले—सही समय पर; स्व-जन—अपने भक्तों की; अभिगुप्तये—रक्षा के लिए; बिभर्षि—धारण करते हो; सत्त्वम्—सतोगुण; खल—दुष्टों को; निग्रहाय—दण्ड देने के लिए; च—तथा; स्व—अपनी; लीलया—लीलाओं से; वेद-पथम्—वेदों का मार्ग; सनातनम्—नित्य; वर्ण-आश्रम—वर्णों तथा आश्रमों का; आत्मा—आत्मा; पुरुषः—भगवान्; परः—सर्वोच्च; भवान्—आप।

तो भी उचित अवसरों पर आप अपने भक्तों की रक्षा करने तथा दुष्टों को दण्ड देने के लिए शुद्ध सतोगुणी रूप धारण करते हैं। इस तरह वर्णाश्रम के आत्मास्वरूप आप भगवान् अपनी आनन्द-लीलाओं का भोग करते हुए वेदों के शाश्वत पथ को बनाये रखते हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में भगवान् द्वारा जनसामान्य को प्रबुद्ध करने ( जनसंग्रहः ) तथा सांसारिक आचरण का अनुकरण करने का वर्णन है। चूँकि भगवान् सदैव पूर्ण बने रहते हैं, अतएव वे इस जगत में आकर जिस शरीर को प्रकट करते हैं वह भौतिक सत्त्व से छुआ नहीं जाता, प्रत्युत वह विशुद्ध सत्त्व की अभिव्यक्ति होता है अर्थात् वही दिव्य तत्त्व जिससे उनका मूल-स्वरूप बनता है।

ब्रह्म ते हृदयं शुक्लं तपःस्वाध्यायसंयमैः ।  
यत्रोपलब्धं सद्व्यक्तमव्यक्तं च ततः परम् ॥ १९ ॥

#### शब्दार्थ

ब्रह्म—वेद; ते—तुम्हारे; हृदयम्—हृदय; शुक्लम्—शुद्ध; तपः—तपस्या; स्वाध्याय—अध्ययन; संयमैः—तथा आत्मसंयम द्वारा; यत्र—जिसमें; उपलब्धम्—अनुभव किये गये; सत्—शुद्ध आध्यात्मिक; व्यक्तम्—प्रकट ( भौतिक सृष्टि का प्रतिफल ); अव्यक्तम्—अप्रकट ( सृष्टि के सूक्ष्म कारण ); च—तथा; ततः—उसको; परम्—दिव्य को।

वेद आपके निर्मल हृदय हैं और उनके माध्यम से तपस्या, अध्ययन एवं आत्मसंयम द्वारा मनुष्य प्रकट, अप्रकट तथा इन दोनों से परे शुद्ध अस्तित्व को देख सकता है।

तात्पर्य : व्यक्त के अन्तर्गत इस जगत की दृश्य वस्तुएँ आती हैं और अव्यक्त के अन्तर्गत विराट

सृष्टि के सूक्ष्म आधारभूत कारण आते हैं। सारे वेद भौतिक कार्य-कारण से परे ब्रह्म के दिव्य प्रक्षेत्र की ओर इंगित करने वाले हैं।

तस्माद्ब्रह्मकुलं ब्रह्मन्शास्त्रयोनेस्त्वमात्मनः ।

सभाजयसि सद्भाम तद्ब्रह्मण्याग्रणीर्भवान् ॥ २० ॥

#### शब्दार्थ

तस्मात्—इसीलिए; ब्रह्म—ब्राह्मणों के; कुलम्—वंश को; ब्रह्मन्—हे परम सत्य; शास्त्र—शास्त्र; योनेः—अनुभूति के साधन रूप; त्वम्—तुमको; आत्मनः—अपने आप; सभाजयसि—सम्मान प्रदर्शित करते हैं; सत्—पूर्ण; धाम—वास, स्थान; तत्—फलस्वरूप; ब्रह्मण्य—ब्राह्मण संस्कृति का आदर करने वालों के; अग्रणीः—नायक; भवान्—आप।

अतएव हे परब्रह्म, आप ब्राह्मण कुल के सदस्यों का आदर करते हैं, क्योंकि वे ही पूर्ण अभिकर्ता हैं, जिनके माध्यम से वेदों के साक्ष्य द्वारा कोई व्यक्ति आपका साक्षात्कार कर सकता है। इसी कारण से आप ब्राह्मणों के अग्रणी पूजक हैं।

अद्य नो जन्मसाफल्यं विद्यायास्तपसो दृशः ।

त्वया सङ्गम्य सद्गत्या यदन्तः श्रेयसां परः ॥ २१ ॥

#### शब्दार्थ

अद्य—आज; नः—हमारा; जन्म—जन्म का; साफल्यम्—फलीभूत; विद्यायाः—शिक्षा का; तपसः—तपस्या का; दृशः—देखने की शक्ति का; त्वया—तुम्हारे द्वारा; सङ्गम्य—संगति दी जाकर; सत्—साधु-पुरुषों की; गत्या—गन्तव्य; यत्—क्योंकि; अन्तः—सीमा; श्रेयसाम्—लाभों की; परः—चरम।

आज हमारा जन्म, शिक्षा, तपस्या तथा दृष्टि सभी पूर्ण हो चुके हैं, क्योंकि हम समस्त सन्त-पुरुषों के लक्ष्य, आपसे सान्निध्य प्राप्त करने में समर्थ हो सके हैं। निस्सन्देह आप स्वयं ही अनन्तिम, अर्थात् परम आशीर्वाद हैं।

तात्पर्य : मुनिगण यहाँ पर भगवान् के प्रति अपने आदर एवं उसके बदले उनके द्वारा मुनियों की पूजा की तुलना करते हैं। भगवान् कृष्ण ब्राह्मणों का आदर इसलिए करते हैं, क्योंकि अल्पज्ञों को उपदेश देने के वे साधन स्वरूप हैं, जबकि वास्तव में भगवान् स्वयं परम स्वतंत्र हैं। दूसरी ओर उनकी पूजा करने वाले ब्राह्मण कल्पना से बढ़कर लाभ प्राप्त करते हैं।

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ।

स्वयोगमाययाच्छन्नमहिम्ने परमात्मने ॥ २२ ॥

#### शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; तस्मै—उस; भगवते—भगवान् को; कृष्णाय—कृष्ण को; अकुण्ठ—असीम; मेधसे—बुद्धिमान; स्व—निजी; योग-मायया—अन्तरंगा माया-शक्ति द्वारा; आच्छन्न—ढका; महिम्ने—महिमा वाले; परम-आत्मने—परमात्मा को।

हम अनन्त बुद्धि वाले परमात्मा अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार करते हैं, जिन्होंने अपनी योगमाया द्वारा अपनी महानता को छिपा रखा है।

तात्पर्य : भगवान् की पूजा करने से जो भावी लाभ होगा उसके अतिरिक्त हर मनुष्य का यह परमावश्यक कर्तव्य है कि वह अधीनता तथा दासता की कृतज्ञता के रूप में उनको नमस्कार करे। भगवान् कृष्ण ने इसकी संस्तुति की है ( भगवद्गीता ९.३४) —

मन्मना भव मदभक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।

मामेवैष्यसि युक्त्वैवं आत्मानं मत्परायणः ॥

“अपने मन को सदैव मेरे चिन्तन में लगाओ, मेरे भक्त बनो, मुझे नमस्कार करो और मेरी ही पूजा करो। मुझमें पूर्णतया लीन होने पर तुम निश्चय ही मेरे पास आओगे।”

न यं विदन्त्यमी भूपा एकारामाश्च वृष्णयः ।

मायाजवनिकाच्छन्नमात्मानं कालमीश्वरम् ॥ २३ ॥

#### शब्दार्थ

न—नहीं; यम्—जिसको; विदन्ति—जानते हैं; अमी—ये; भू-पाः—राजागण; एक—एकसाथ; आरामाः—भोग करने वाले; च—तथा; वृष्णयः—वृष्णिगण; माया—माया की दैवी शक्ति के; जवनिका—पर्दे द्वारा; आच्छन्नम्—आच्छादित; आत्मानम्—परमात्मा को; कालम्—काल को; ईश्वरम्—श्रेष्ठ सुप्रेम चोन्नोल्लेख्य।

न तो ये राजा, न ही वृष्णिगण, जो आपकी घनिष्ठ संगति का आनन्द उठाते हैं, आपको समस्त सृष्टि के आत्मा, काल की शक्ति तथा परम नियन्ता के रूप में जानते हैं। उनके लिए तो आप माया के पर्दे से ढके रहते हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती की व्याख्या है कि भगवान् कृष्ण का परिवार अर्थात् वृष्णिजन उनसे भलीभाँति परिचित थे, किन्तु वे यह अनुभव नहीं कर सकते थे कि वे हर प्राणी के हृदय में वास करने वाले परमात्मा हैं। और कुरुक्षेत्र में आये वे राजा जो कृष्णभक्त नहीं थे, उन्हें काल के रूप में अर्थात् हर वस्तु के संहारक के रूप में नहीं पहचान सके। भक्त तथा अभक्त दोनों ही माया द्वारा आच्छन्न होते हैं, किन्तु भिन्न भिन्न तरीकों से। भौतिकतावादियों के लिए माया मोह होती है, किन्तु वैष्णवों के साथ वह योगमाया के रूप में कार्य करती है और वह भगवान् की महानता के प्रति उनकी भिन्नता को आच्छादित करती है और उन्हें उनकी नित्य आनन्द-लीलाओं में लगाती है।

यथा शयानः पुरुष आत्मानं गुणतत्त्वदृक् ।

नाममात्रेन्द्रियाभातं न वेद रहितं परम् ॥ २४ ॥

एवं त्वा नाममात्रेषु विषयेष्विन्द्रियेहया ।

मायया विभ्रमच्चित्तो न वेद स्मृत्युपप्लवात् ॥ २५ ॥

### शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; शयानः—सोता हुआ; पुरुषः—व्यक्ति; आत्मानम्—अपने को; गुण—गौण; तत्त्व—यथार्थ के; दृक्—जिसकी दृष्टि; नाम—नामों; मात्र—तथा स्वरूपों के साथ; इन्द्रिय—उसके मन से; आभातम्—प्रकट; न वेद—नहीं जानता; रहितम्—पृथक्; परम्—प्रत्युत; एवम्—इसी तरह; त्वा—तुम; नाम-मात्रेषु—नामों तथा स्वरूपों से युक्त; विषयेषु—भौतिक अनुभूति की वस्तुओं में; इन्द्रिय—इन्द्रियों की; ईहया—क्रियाशीलता से; मायया—आपकी माया के प्रभाव से; विभ्रमत्—मोहग्रस्त होकर; चित्तः—चेतना वाला; न वेद—नहीं जानता; स्मृति—अपनी स्मरणशक्ति के; उपप्लवात्—भंग हो जाने से।

सोया हुआ व्यक्ति अपने को एक वैकल्पिक सत्य मानता है और स्वयं यह देखते हुए कि उसके विविध नाम तथा रूप हैं, वह अपनी जाग्रत पहचान को भूल जाता है, जो उसके स्वप्न से सर्वथा पृथक् होती है। इसी प्रकार जिसकी चेतना माया द्वारा मोहित हो जाती है, वह भौतिक वस्तुओं के ही नामों तथा स्वरूपों को देखता है। इस तरह ऐसा पुरुष अपनी स्मरणशक्ति खो देता है और आपको जान नहीं सकता।

तात्पर्य : जिस तरह मनुष्य का स्वप्न उसकी स्मृतियों तथा इच्छाओं के संग्रह से उत्पन्न गौण वास्तविकता होता है, उसी तरह यह ब्रह्माण्ड परमेश्वर की निकृष्ट सृष्टि के रूप में विद्यमान रहता है, जो वास्तव में उनसे पृथक् नहीं होता। और जिस तरह निद्रा से जगा हुआ पुरुष अपने जाग्रत जीवन की उच्चतर वास्तविकता का अनुभव करता है, वैसे ही भगवान् की भी अपनी पृथक् उच्चतर वास्तविकता होती है, जो इस जगत में ज्ञेय किसी भी वस्तु से परे है। भगवान् के ही शब्दों में ( भगवद्गीता ९.४-५) —

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।

भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥

“मेरे अव्यक्त रूप में यह समूचा ब्रह्माण्ड मुझसे व्याप्त है। सारे जीव मुझमें हैं, किन्तु मैं उनमें नहीं हूँ। फिर भी प्रत्येक सृजित वस्तु मुझमें स्थित नहीं है। मेरे योग-ऐश्वर्य को देखो! यद्यपि मैं सारे

जीवों का पालनहार हूँ और मैं हर वस्तु हूँ फिर भी मैं इस विराट जगत का अंश नहीं हूँ, क्योंकि मैं ही सृष्टि का उद्गम हूँ।”

तस्याद्य ते ददृशिमाङ्घ्रिमघौघमर्ष-

तीर्थास्पदं हृदि कृतं सुविपक्वयोगैः ।

उत्सिक्तभक्त्युपहताशय जीवकोशा

आपुर्भवद्गतिमथानुगृहान भक्तान् ॥ २६ ॥

#### शब्दार्थ

तस्य—उसका; अद्य—आज; ते—तुम्हारा; ददृशिम—हम देख चुके हैं; अङ्घ्रिम्—पैरों को; अघ—पापों की; ओघ—बाढ़ें; मर्ष—नष्ट करते हैं; तीर्थ—तीर्थस्थानों ( गंगा नदी ) के; आस्पदम्—स्रोत; हृदि—हृदय में; कृतम्—रखा; सु—अच्छी तरह; विपक्व—पका हुआ; योगैः—उनके द्वारा जिनका योगाभ्यास; उत्सिक्त—पूर्णतया विकसित; भक्ति—भक्ति द्वारा; उपहत—विनष्ट; आशय—भौतिक मनोवृत्ति; जीव—जीवात्मा का; कोशाः—बाह्य आवरण; आपुः—उन्होंने प्राप्त किया; भवत्—आपका; गतिम्—गन्तव्य; अथ—इसलिए; अनुगृहान—कृपा प्रदर्शित कीजिये; भक्तान्—अपने भक्तों पर।

आज हमने आपके उन चरणों का प्रत्यक्ष दर्शन पा लिया, जो उस पवित्र गंगा नदी के उद्गम हैं, जो पापों के ढेरों को धो डालती है। पूर्णयोगी आपके चरणों का ध्यान उत्तम विधि से अपने हृदयों में कर सकते हैं, किन्तु केवल वे, जो आपकी पूरे मन से भक्ति करते हैं और इस तरह आत्मा के आवरण—भौतिक मन—को दूर करते हैं, वे आपको अपने अन्तिम गन्तव्य के रूप में प्राप्त करते हैं। अतएव आप हम अपने भक्तों पर कृपा प्रदर्शित करें।

तात्पर्य : पवित्र गंगा नदी में सारे पापों को नष्ट करने की क्षमता है, क्योंकि यह भगवान् के चरणकमलों से निकलती है और इस तरह इसमें उनके चरणों की धूल मिली रहती है। इस श्लोक की व्याख्या करते हुए श्रील श्रीधर स्वामी कहते हैं, “यदि भगवान् मुनियों को यह सलाह दें कि उन्हें भक्ति नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वे पहले से आध्यात्मिक ज्ञान तथा तपस्या में बड़े-चढ़े हैं, तो वे यहाँ पर आदरपूर्वक ऐसे सुझाव का तिरस्कार यह इंगित करते हुए कर रहे हैं कि जिन योगियों ने भक्तिपूर्वक कृष्ण की शरण में जाकर अपने भौतिक मन तथा अहंकार को विनष्ट कर दिया है वे ही पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं। वे अपनी स्तुति यह कहकर समाप्त करते हैं कि वे उन्हें अपना भक्त बनाकर उन पर अपनी महान् कृपा प्रदर्शित करें।”

श्रीशुक उवाच

इत्यनुज्ञाप्य दाशार्हं धृतराष्ट्रं युधिष्ठिरम् ।



राजर्षे स्वाश्रमानान्तुं मुनयो दधिरे मनः ॥ २७ ॥

**शब्दार्थ**

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार कह कर; अनुज्ञाप्य—विदा होने की अनुमति लेकर; दाशार्हम्—महाराज दाशार्ह के वंशज कृष्ण से; धृतराष्ट्रम्—धृतराष्ट्र से; युधिष्ठिरम्—युधिष्ठिर से; राज—राजाओं में से; ऋषे—हे ऋषि; स्व—अपने अपने; आश्रमान्—कुटियों को; गन्तुम्—जाने में; मुनयः—मुनिगण; दधिरे—उन्मुख किया; मनः—अपने मनों को।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे ज्ञानवान राजा, इस तरह कहकर मुनियों ने दाशार्ह, धृतराष्ट्र तथा युधिष्ठिर से विदा होने की अनुमति ली और अपने अपने आश्रमों को जाने के लिए तैयार होने लगे।

तद्वीक्ष्य तानुपव्रज्य वसुदेवो महायशाः ।

प्रणम्य चोपसङ्गह्य बभाषेदं सुयन्त्रितः ॥ २८ ॥

**शब्दार्थ**

तत्—यह; वीक्ष्य—देखकर; तान्—उनको; उपव्रज्य—पास आकर; वसुदेवः—वसुदेव ने; महा—महान्; यशाः—यशस्वी; प्रणम्य—प्रणाम करके; च—तथा; उपसङ्गह्य—उनके चरण पकड़ कर; बभाष—कहा; इदम्—यह; सु—अत्यन्त; यन्त्रितः—सावधानी के साथ बनाया हुआ।

यह देखकर कि वे साधु प्रस्थान करने वाले हैं, सम्मान्य वसुदेव उनके पास पहुँचे और उन्हें नमस्कार करने एवं उनके चरण-स्पर्श करने के बाद, उन्होंने अत्यन्त सावधानी से चुने हुए शब्दों में उनसे कहा।

श्रीवसुदेव उवाच

नमो वः सर्वदेवेभ्य ऋषयः श्रोतुमर्हथ ।

कर्मणा कर्मनिर्हारो यथा स्यान्नस्तदुच्यताम् ॥ २९ ॥

**शब्दार्थ**

श्री-वसुदेवः उवाच—श्री वसुदेव ने कहा; नमः—नमस्कार; वः—आपको; सर्व—समस्त; देवेभ्यः—देवताओं के; ऋषयः—हे ऋषि; श्रोतुम् अर्हथ—कृपया सुनें; कर्मणा—भौतिक कार्य द्वारा; कर्म—(पूर्व) कार्य का; निर्हारः—निराकरण, नाश; यथा—कैसे; स्यात्—हो; नः—हमको; तत्—वह; उच्यताम्—कृपया कहें।

श्री वसुदेव ने कहा : हे समस्त देवताओं के आश्रय, आपको नमस्कार है। हे ऋषियो, कृपा करके मेरी बात सुनें। कृपा करके हमें यह बतलायें कि मनुष्य का कर्मफल किस तरह आगे और कर्म करके विनष्ट किया जा सकता है?

तात्पर्य : यहाँ पर वसुदेव ने ऋषियों को “समस्त देवताओं का निवास” कहकर सम्बोधित किया है। इस कथन की पुष्टि उस प्रामाणिक श्रुति-मन्त्र से होती है, जिसमें कहा गया है यावतीर्वे देवतास्ताः

सर्वा वेदविदि ब्राह्मणे वसन्ति—जो भी देवता हैं, वे सब उस ब्राह्मण में वास करते हैं, जो वेद को जानता है।

श्रीनारद उवाच

नातिचित्रमिदं विप्रा वसुदेवो बुभुत्सया ।

कृष्णाम्त्वार्भकं यन्नः पृच्छति श्रेय आत्मनः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

श्री-नारदः उवाच—श्री नारद ने कहा; न—नहीं; अति—अत्यन्त; चित्रम्—विचित्र; इदम्—यह; विप्राः—हे ब्राह्मणो; वसुदेवः—वसुदेव; बुभुत्सया—जानने की इच्छा से; कृष्णम्—कृष्ण को; मत्वा—सोच कर; अर्भकम्—बालक; यत्—यह तथ्य कि; नः—हमसे; पृच्छति—पूछता है; श्रेयः—सर्वोच्च मंगल के विषय में; आत्मनः—अपने लिए।

श्री नारद मुनि ने कहा : हे ब्राह्मणो, यह उतना आश्चर्यजनक नहीं है कि जानने की उत्सुकता से वसुदेव ने अपने चरम लाभ के विषय में हमसे प्रश्न किया है, क्योंकि वे कृष्ण को मात्र एक बालक ही मानते हैं।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी नारद के विचारों का वर्णन करते हुए लिखते हैं: श्री नारद समझ गये कि किस तरह वसुदेव ने अपने को सामान्य गृहस्थ मानते हुए मुनियों से कर्मयोग के विषय में पूछा यद्यपि उन्हें पहले ही वह आध्यात्मिक लक्ष्य प्राप्त हो चुका था, जिसे बड़े-बड़े योगी तथा ऋषि भी प्राप्त नहीं कर पाते। तो भी नारद को चिन्ता हुई कि वसुदेव इतने सारे मुनियों के सामने कहीं भगवान् कृष्ण को निरा बालक समझ कर कोई दुविधाजनक भाव न उत्पन्न कर दें। नारद तथा अन्य मुनियों ने भगवान् कृष्ण के प्रति आदर-भाव बनाये रखना उचित समझा, इसीलिए कृष्ण की अवहेलना करके वसुदेव को उत्तर क्योंकर देने देते? इसी परेशानी से बचने के लिए नारद ने वहाँ पर उपस्थित सारे व्यक्तियों के समक्ष श्रीकृष्ण की सर्वश्रेष्ठता का स्मरण दिलाना चाहा।

सन्निकर्षोऽत्र मर्त्यानामनादरणकारणम् ।

गाङ्गं हित्वा यथान्याम्भस्तत्रत्यो याति शुद्धये ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

सन्निकर्षः—निकटता; अत्र—यहाँ ( इस जगत में ); मर्त्यानाम्—मर्त्यों के लिए; अनादरण—अनादर का; कारणम्—कारण; गाङ्गम्—गंगा ( के जल ) को; हित्वा—त्याग कर; यथा—जिस तरह; अन्य—दूसरा; अम्भः—पानी; तत्रत्यः—उसके पास रहने वाला; याति—जाता है; शुद्धये—शुद्धि के लिए।

इस संसार में परिचय बढ़ने से अनादर पनपता है। उदाहरणार्थ जो व्यक्ति गंगा के तट पर रहता है, वह अपनी शुद्धि के लिए गंगा की उपेक्षा करके अन्य किसी जलाशय को जाय।

यस्यानुभूतिः कालेन लयोत्पत्त्यादिनास्य वै ।  
स्वतोऽन्यस्माच्च गुणतो न कुतश्चन रिष्यति ॥ ३२ ॥

तं क्लेशकर्मपरिपाकगुणप्रवाहै-  
रव्याहतानुभवमीश्वरमद्वितीयम् ।  
प्राणादिभिः स्वविभवैरुपगूढमन्यो  
मन्येत सूर्यमिव मेघहिमोपरागैः ॥ ३३ ॥

### शब्दार्थ

यस्य—जिसकी; अनुभूतिः—जानकारी से; कालेन—समय द्वारा उत्पन्न; लय—विनाश; उत्पत्ति—सृष्टि; आदिना—इत्यादि के द्वारा; अस्य—इस ( ब्रह्माण्ड ) का; वै—निस्सन्देह; स्वतः—अपने से; अन्यस्मात्—किसी अन्य कारण से; च—अथवा; गुणतः—अपने गुणों के रूप में; न—नहीं; कुतश्चन—किसी कारण से; रिष्यति—टूट जाता है; तम्—उसको; क्लेश—भौतिक कष्ट; कर्म—भौतिक कार्यकलाप; परिपाक—उनके परिणाम; गुण—प्रकृति के गुणों के; प्रवाहैः—तथा प्रवाह द्वारा; अव्याहत—अप्रभावित; अनुभवम्—जिसकी चेतना; ईश्वरम्—परम नियन्ता को; अद्वितीयम्—अद्वितीय; प्राण—प्राणवायु; आदिभिः—इत्यादि से; स्व—निजी; विभवैः—अंशों द्वारा; उपगूढम्—दूसरे वेश में; अन्यः—अन्य कुछ; मन्येत—मानता है; सूर्यम् इव—सूर्य की तरह; मेघ—बादलों के द्वारा; हिम—बर्फ; उपरागैः—तथा ग्रहणों के द्वारा ।

भगवान् की चेतना कभी भी काल द्वारा, ब्रह्माण्ड की सृष्टि तथा संहार द्वारा, अपने ही गुणों में परिवर्तन द्वारा, या किसी अन्य कारण से, चाहे वह स्वजनित हो या बाह्य हो, विचलित नहीं होती। भले ही अद्वितीय भगवान् की चेतना भौतिक कष्ट द्वारा, भौतिक कर्म द्वारा या प्रकृति के गुणों के निरन्तर प्रवाह द्वारा प्रभावित न होती हो, किन्तु तो भी सामान्य व्यक्ति यही सोचते हैं कि भगवान् प्राण तथा अन्य भौतिक तत्त्वों की अपनी ही सृष्टियों से आच्छादित हैं, जिस तरह कोई व्यक्ति यह सोच सकता है कि सूर्य बादल, बर्फ या ग्रहण से ढक गया है।

तात्पर्य : इस संसार की वस्तुएँ किसी न किसी कारण से नष्ट हो जाती हैं। काल स्वयं ही प्रत्येक सृजित वस्तु का अन्त में क्षय करता है। उदाहरणार्थ, एक फल पहले पकता है, किन्तु उसके बाद किसी के द्वारा उसे खाया जायेगा या फिर सड़ जायेगा। कुछ वस्तुएँ, यथा आकाश की बिजली प्रकट होते ही नष्ट हो जाती हैं, जबकि अन्य वस्तुएँ बाह्य अभिकर्ताओं द्वारा सहसा नष्ट कर दी जाती हैं, जैसे कि मिट्टी का पात्र हथौड़े के द्वारा नष्ट किया जा सकता है। जीवित वस्तुओं तथा अन्य वस्तुओं में, जिनका अस्तित्व अल्पकालिक है, गुणों का प्रवाह निरन्तर होता रहता है। वे विनष्ट की जाती हैं और उनके स्थान पर दूसरी वस्तुएँ ला दी जाती हैं।

इन सबके विपरीत भगवान् की चेतना कभी भी किसी वस्तु द्वारा बाधित नहीं होती। मनुष्य अपने अज्ञान के ही कारण भगवान् को भौतिक परिस्थितियों के अधीन सामान्य मनुष्य समझ लेता है। मर्त्य

लोग अपने कर्मबन्धन तथा उसके फलस्वरूप सुख-दुख के द्वारा आच्छादित रहते हैं, किन्तु भगवान् कभी भी अपने ही अंशों द्वारा आच्छादित नहीं हो सकते। इसी तरह बृहद सूर्य बादलों, बर्फ तथा ग्रहणों जैसी क्षुद्र घटनाओं का स्रोत है, इसलिए वह कभी इनसे आच्छादित नहीं हो सकता, भले ही सामान्य प्रेक्षक (दर्शक) ऐसा सोचता हो।

अथोचुर्मुनयो राजन्नाभाष्यानल्सदुन्दभिम् ।  
सर्वेषां शृण्वतां राज्ञां तथैवाच्युतरामयोः ॥ ३४ ॥

#### शब्दार्थ

अथ—तब; ऊचुः—कहा; मुनयः—मुनियों ने; राजन्—हे राजा (परीक्षित); आभाष्य—कहकर; आनक-दुन्दुभिम्—वसुदेव को; सर्वेषाम्—समस्त; शृण्वताम्—सुनते हुए; राज्ञाम्—राजाओं के; तथा एव—भी; अच्युत-रामयोः—कृष्ण तथा बलराम के।

[ शुक्रदेव गोस्वामी ने कहा ] : हे राजन्, तब मुनियों ने वसुदेव को सम्बोधित करते हुए फिर से कहा, जबकि भगवान् अच्युत तथा बलराम के साथ ही साथ सारे राजा सुन रहे थे।

कर्मणा कर्मनिर्हार एष साधुनिरूपितः ।  
यच्छ्रद्धया यजेद्विष्णुं सर्वयज्ञेश्वरं मखैः ॥ ३५ ॥

#### शब्दार्थ

कर्मणा—कर्म द्वारा; कर्म—विगत कर्मों के फलों के; निर्हारः—प्रतिक्रिया, निष्फल करना; एषः—यह; साधु—सही-सही; निरूपितः—निश्चित किया गया; यत्—जो; श्रद्धया—श्रद्धा के साथ; यजेत्—पूजा करे; विष्णुम्—विष्णु की; सर्व—समस्त; यज्ञ—यज्ञों के; ईश्वरम्—ईश्वर की; मखैः—वैदिक अग्नि-अनुष्ठानों द्वारा।

[ मुनियों ने कहा ] : यह निश्चित निष्कर्ष निकाला जा चुका है कि कर्म को उसके आगे और भी कर्म करके निष्फल किया जाता है जब मनुष्य श्रद्धापूर्वक समस्त यज्ञों के स्वामी विष्णु की पूजा करने के साधनस्वरूप वैदिक यज्ञ सम्पन्न करता है।

चित्तस्योपशमोऽयं वै कविभिः शास्त्रचक्षुसा ।  
दर्शितः सुगमो योगो धर्मश्चात्ममुदावहः ॥ ३६ ॥

#### शब्दार्थ

चित्तस्य—मन की; उपशमः—शान्ति; अयम्—यह; वै—निस्सन्देह; कविभिः—विद्वानों द्वारा; शास्त्र—शास्त्र रूप; चक्षुषा—आँख से; दर्शितः—दिखलाया हुआ; सु-गमः—सरलता से सम्पन्न; योगः—मोक्ष प्राप्त करने का साधन; धर्मः—धार्मिक कर्तव्य; च—तथा; आत्म—हृदय को; मुत्—आनन्द; आवहः—लाने वाला।

शास्त्र की आँख से देखने वाले विद्वानों ने यह प्रदर्शित कर दिया है कि क्षुब्ध मन को दमन करने तथा मोक्ष प्राप्त करने की यही सबसे सुगम विधि है और यही पवित्र धर्म है, जिससे मन

को आनन्द प्राप्त होता है।

अयं स्वस्त्ययनः पन्था द्विजातेर्गृहमेधिनः ।

यच्छ्रद्धयाप्तवित्तेन शुक्लेनेज्येत पूरुषः ॥ ३७ ॥

#### शब्दार्थ

अयम्—यह; स्वस्ति—मंगल, कल्याण; अयनः—लाने वाला; पन्था—पथ; द्वि-जातेः—द्विज के लिए; गृह—घर पर; मेधिनः—यज्ञ करने वाला; यत्—जो; श्रद्धया—निःस्वार्थपूर्वक; आप्त—सही साधनों से प्राप्त; वित्तेन—अपने धन से; शुक्लेन—निर्मल; ईज्येत—पूजा करे; पूरुषः—भगवान् की।

धार्मिक द्विज गृहस्थ के लिए सर्वाधिक शुभ पथ यही है कि वह ईमानदारी से प्राप्त की गई सम्पदा से भगवान् की पूजा निःस्वार्थ भाव से करे।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी तथा श्री जीव गोस्वामी दोनों ही एकमत हैं कि वैदिक यज्ञों का आनुष्ठानिक कर्म आसक्त गृहस्थों (गृहमेधियों) के लिए होता है। जो लोग पहले से कृष्णभावनामृत में वैराग्य प्राप्त हैं यथा स्वयं वसुदेव, उन्हें भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत में बताया गया है, भगवान् के भक्तों, उनके अर्चाविग्रह रूप के, उनके नाम, प्रसादम् तथा उनकी शिक्षाओं के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने की ही आवश्यकता रहती है।

वित्तैषणां यज्ञदानैर्गृहैर्दारसुतैषणाम् ।

आत्मलोकैषणां देव कालेन विसृजेद्बुधः ।

ग्रामे त्यक्तैषणाः सर्वे ययुर्धीरास्तपोवनम् ॥ ३८ ॥

#### शब्दार्थ

वित्त—सम्पदा की; एषणाम्—इच्छा को; यज्ञ—यज्ञ से; दानैः—तथा दान द्वारा; गृहैः—गृहस्थी के कार्यों में व्यस्तता द्वारा; दार—पत्नी; सुत—तथा सन्तान की; एषणाम्—इच्छा को; आत्म—अपने लिए; लोक—(अगले जन्म में) उच्च लोक के लिए; एषणाम्—इच्छा; देव—हे सन्त स्वभाव वाले वसुदेव; कालेन—काल के कारण; विसृजेत्—त्याग देना चाहिए; बुधः—बुद्धिमान को; ग्रामे—गृहस्थ जीवन के लिए; त्यक्त—छोड़ी हुई; एषणाः—इच्छाएँ; सर्वे—समस्त; ययुः—चले गये; धीराः—गम्भीर मुनिगण; तपः—तपस्या के; वनम्—वन को।

बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि यज्ञ करके तथा दान-कर्मों के द्वारा धन-सम्पदा की अपनी इच्छा का परित्याग करना सीखे। उसे गृहस्थ जीवन के अनुभव से पत्नी तथा सन्तान की अपनी इच्छा का परित्याग करना सीखना चाहिए। हे सन्त वसुदेव, उसे काल के प्रभाव का अध्ययन करके अगले जीवन में उच्चतर लोक में जाने की अपनी इच्छा का परित्याग करना सीखना चाहिए। जिन आत्मसंयमी मुनियों ने गृहस्थ जीवन के प्रति अपनी आसक्ति का इस तरह परित्याग

कर दिया है, वे तपस्या करने के लिए वन में चले जाते हैं।

ऋणैस्त्रिभिर्द्विजो जातो देवर्षिपितृणां प्रभो ।

यज्ञाध्ययनपुत्रैस्तान्यनिस्तीर्य त्यजन्पतेत् ॥ ३९ ॥

#### शब्दार्थ

ऋणैः—ऋणों से; त्रिभिः—तीनों; द्वि-जः—द्विज जाति का सदस्य; जातः—उत्पन्न होता है; देव—देवताओं को; ऋषि—मुनिगण; पितृणाम्—तथा पूर्वजों के; प्रभो—हे स्वामी ( वसुदेव ); यज्ञ—यज्ञ; अध्ययन—शास्त्र का अध्ययन; पुत्रैः—तथा सन्तान ( उत्पन्न करने ) से; तानि—ये ( ऋण ); अनिस्तीर्य—न समाप्त करके, उऋण हुए बिना; त्यजन्—( अपना शरीर ) त्यागते हुए; पतेत्—नीचे गिर जाता है।

हे प्रभु, एक द्विज तीन प्रकार के ऋण—देवताओं के प्रति ऋण, मुनियों के प्रति ऋण तथा अपने पुरखों के प्रति ऋण—लेकर उत्पन्न होता है। यदि वह यज्ञ, शास्त्र-अध्ययन तथा सन्तानोत्पत्ति द्वारा इन ऋणों को चुकता किये बिना अपना शरीर त्याग देता है, तो वह नरक में जा गिरेगा।

तात्पर्य : ब्राह्मण के विशेष कर्तव्यों के विषय में श्रुति का कथन है *जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवाञ्जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः*—“जब भी ब्राह्मण जन्म लेता है उसके साथ साथ तीन ऋण जन्म लेते हैं। वह मुनियों का ऋण ब्रह्मचर्य द्वारा चुका सकता है, देवताओं का ऋण यज्ञ द्वारा चुका सकता है और अपने पुरखों का ऋण सन्तान उत्पन्न करके चुकता कर सकता है।”

त्वं त्वद्य मुक्तो द्वाभ्यां वै ऋषिपित्रोर्महामते ।

यज्ञैर्देवर्णमुन्मुच्य निरृणोऽशरणो भव ॥ ४० ॥

#### शब्दार्थ

त्वम्—तुम; तु—लेकिन; अद्य—आज; मुक्तः—मुक्त, स्वतंत्र; द्वाभ्याम्—दो ( ऋणों ) से; वै—निश्चय ही; ऋषि—ऋषियों; पित्रोः—तथा पूर्वजों के प्रति; महा-मते—हे उदार; यज्ञैः—वैदिक यज्ञों द्वारा; देव—देवताओं के प्रति; ऋणम्—ऋण से; उन्मुच्य—अपने को छुड़ाकर; निरृणः—उऋण; अशरणः—शरणविहीन; भव—बनो।

किन्तु हे महामते, आप तो पहले ही अपने दो ऋणों—मुनियों के तथा पुरखों के ऋणों—से मुक्त हैं। अब आप वैदिक यज्ञ सम्पन्न करके देव-ऋण से भी उऋण हो लें। इस तरह आप अपने को ऋण से पूरी तरह मुक्त कर लें और समस्त भौतिक आश्रय का परित्याग कर दें।

वसुदेव भवान्नूनं भक्त्या परमया हरिम् ।

जगतामीश्वरं प्रार्चः स यद्वां पुत्रतां गतः ॥ ४१ ॥

### शब्दार्थ

वसुदेव—हे वसुदेव; भवान्—आप; नूनम्—निस्सन्देह; भक्त्या—भक्ति से; परमया—परम; हरिम्—भगवान् कृष्ण को; जगताम्—सारे जगत् के; ईश्वरम्—परम नियन्ता को; प्रार्चः—ढंग से पूजा की है; सः—वह; यत्—जितना कि; वाम्—तुम दोनों ( वसुदेव-देवकी ) के; पुत्रताम्—पुत्र के कार्य को; गतः—ग्रहण किया हुआ ।

हे वसुदेव, निस्सन्देह इसके पूर्व आपने समस्त जगत् के स्वामी भगवान् हरि की पूजा की होगी। आप तथा आपकी पत्नी दोनों ने ही परम भक्ति के साथ उनकी पूरी तरह से पूजा की होगी, क्योंकि उन्होंने आपके पुत्र की भूमिका स्वीकार की है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने मुनियों के भावों का इस प्रकार उद्धृत किया है “हमने आपको उसी प्रकार सामान्य ढंग से उत्तर दिया, जिस तरह आपने सामान्य वार्ता के रूप में प्रश्न किये हैं। किन्तु वास्तव में आप भगवान् के नित्यमुक्त पिता हैं, अतएव न तो सांसारिक रीति-रिवाज का, न ही शास्त्रीय आदेशों का आपके ऊपर कोई अधिकार है।”

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार वसुदेव नाम ही बतलाने वाला है कि वसुदेव शुद्ध भक्ति की सर्वोत्तम सम्पत्ति (वसु) को तेज के साथ प्रकट करते हैं ( दीव्यति )। ग्यारहवें स्कन्ध में नारद पुनः वसुदेव से मिलेंगे तो उन्हें स्मरण दिलायेंगे कि—

देवर्षिभूताप्तनृणां पितृणां

न किंकरो नायमृणी च राजन् ।

सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं

गतो मुकुन्दं परिहत्य कर्तम् ॥

“हे राजन्! जिसने सारे भौतिक कर्तव्यों का परित्याग कर दिया है और सबों के आश्रयदाता मुकुन्द के चरणकमलों की पूर्ण शरण ग्रहण कर ली है, वह देवताओं, ऋषियों, सामान्य जीवों, सम्बन्धियों, मित्रों, मानव जाति या दिवंगत पूर्वजों का ऋणी नहीं रहता। चूँकि ऐसे सभी प्रकार के जीव भगवान् के अंश हैं, अतः जिसने भगवान् की सेवा में अपने को समर्पित कर दिया है, उसे ऐसे व्यक्तियों की पृथक् से सेवा करने की आवश्यकता नहीं रहती।” ( भागवत ११.५.४१ )

श्रीशुक उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा वसुदेवो महामनाः ।

तानृषीनृत्वजो वव्रे मूर्धनानम्य प्रसाद्य च ॥ ४२ ॥

**शब्दार्थ**

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—ऐसा कहे जाने पर; तत्—उनके; वचनम्—शब्दों को; श्रुत्वा—सुनकर; वसुदेवः—वसुदेव ने; महा-मनाः—उदार; तान्—उन; ऋषीन्—ऋषियों को; ऋत्वजः—पुरोहितों के रूप में; वव्रे—चुना; मूर्धना—अपने सिर से; आनम्य—झुक कर; प्रसाद्य—तुष्ट करके; च—तथा ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : ऋषियों के इन कथनों को सुनकर उदार वसुदेव ने भूमि तक अपना सिर झुकाया और उनकी प्रशंसा करते हुए, उनसे अनुरोध किया कि वे उनके पुरोहित बन जायें।

त एनमृषयो राजन्वृता धर्मेण धार्मिकम् ।

तस्मिन्नयाजयन्क्षेत्रे मखैरुत्तमकल्पकैः ॥ ४३ ॥

**शब्दार्थ**

ते—उन; एनम्—उसको; ऋषयः—ऋषियों ने; राजन्—हे राजा ( परीक्षित ); वृताः—चुने हुए; धर्मेण—धार्मिक सिद्धान्तों के अनुसार; धार्मिकम्—धार्मिक; तस्मिन्—उसमें; अयाजयन्—यज्ञ करने लग गये; क्षेत्रे—पवित्र क्षेत्र ( कुरुक्षेत्र के ) में; मखैः—यज्ञों के द्वारा; उत्तम—श्रेष्ठ; कल्पकैः—जिसकी व्यवस्था ।

हे राजन्, इस तरह अनुरोध किये जाने पर ऋषियों ने पवित्र वसुदेव को कुरुक्षेत्र के पावन स्थान पर कठोर धार्मिक नियमों के अनुसार तथा उत्तम अनुष्ठानिक व्यवस्था के अनुसार अग्नि यज्ञ करने में लगा लिया ।

तद्दीक्षायां प्रवृत्तायां वृष्णयः पुष्करस्त्रजः ।

स्नाताः सुवाससो राजत्राजानः सुष्ट्वलङ्कृताः ॥ ४४ ॥

तन्महिष्यश्च मुदिता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः ।

दीक्षाशालामुपाजग्मुरालिप्ता वस्तुपाणयः ॥ ४५ ॥

**शब्दार्थ**

तत्—उनकी ( वसुदेव की ); दीक्षायाम्—यज्ञ के लिए दीक्षा; प्रवृत्तायाम्—जब यह शुरू होने वाला था; वृष्णयः—वृष्णिगण; पुष्कर—कमलों की; स्त्रजः—माला पहने; स्नाताः—स्नान किये हुए; सुवाससः—अच्छे वस्त्र धारण किये; राजन्—हे राजा; राजानः—( अन्य ) राजा; सुष्ट्व—भव्य रीति से; अलङ्कृताः—आभूषित; तत्—उनकी; महिष्यः—रानियाँ; च—तथा; मुदिताः—प्रसन्नचित्त; निष्क—रत्नजटित हार; कण्ठ्यः—जिनके गलों में; सु-वाससः—सुन्दर वस्त्रों से युक्त; दीक्षा—दीक्षा के लिए; शालाम्—मंच, स्थल पर; उपाजग्मुः—गये; अलिप्ताः—लेप किये; वस्तु—शुभ वस्तुओं से; पाणयः—जिसके हाथों में ।

हे राजन्, जब महाराज वसुदेव यज्ञ के लिए दीक्षित किये जाने वाले थे, तो वृष्णिजन स्नान करके तथा सुन्दर वस्त्र पहने एवं कमल की मालाएँ पहने दीक्षा-स्थल पर आये। अन्य राजा भी खूब सज-धज कर आये। उनके साथ उनकी प्रसन्नचित्त रानियाँ भी थीं। वे अपने गलों में रत्नजटित हार पहने थीं तथा सुन्दर वस्त्र धारण किये थीं। ये रानियाँ चन्दन का लेप किये थीं



और हाथों में पूजा की शुभ सामग्री लिये थीं।

नेदुर्मृदङ्गपटहशङ्खभेर्यानिकादयः ।

ननृतुर्नटनर्तक्यस्तुष्टुवुः सूतमागधाः ।

जगुः सुकण्ठ्यो गन्धर्व्यः सङ्गीतं सहभर्तृकाः ॥ ४६ ॥

#### शब्दार्थ

नेदुः—बजने लगे; मृदङ्ग-पटह—मृदंग तथा पटह जैसे ढोल; शङ्ख—शंख; भेरी-आनक—भेरि तथा आनक जैसे ढोल; आदयः—तथा अन्य बाजे; ननृतुः—नाचने लगे; नट-नर्तक्यः—पुरुष नर्तक तथा स्त्री नर्तकियाँ; तुष्टुवुः—यशोगान किया; सूत-मागधाः—सूतों तथा मागधों ने; जगुः—गाया; सु-कण्ठ्यः—मधुर वाणी वाली; गन्धर्व्यः—गन्धर्वियों ने; सङ्गीतम्—गीत; सह—साथ; भर्तृकाः—अपने पतियों के।

मृदंग, पटह, शंख, भेरी, आनक तथा अन्य वाद्य बजने लगे। नर्तकों तथा नर्तकियों ने नृत्य किया और सूतों तथा मागधों ने यशोगान किया। मधुर वाणी वाली गन्धर्वियों ने अपने अपने पतियों के साथ गीत गाये।

तमभ्यषिञ्चन्विधिवदक्तमभ्यक्तमृत्विजः ।

पत्नीभिरष्टादशभिः सोमराजमिवोद्बुभिः ॥ ४७ ॥

#### शब्दार्थ

तम्—उसको; अभ्यषिञ्चन्—पवित्र जल छिड़कते हुए; विधिवत्—शास्त्रीय नियमों के अनुसार; अक्तम्—आँखों में अंजन लगाये; अभ्यक्तम्—ताजे नवनीत से शरीर को लेप किये; ऋत्विजः—पुरोहितगण; पत्नीभिः—अपनी अपनी पत्तियों के साथ; अष्टा-दशभिः—अठारह; सोम-राजम्—राजसी; इव—सदृश; उद्बुभिः—तारों से।

वसुदेव की आँखों में काजल लगाने तथा उनके शरीर को ताजे मक्खन से लेप करने के बाद पुरोहितों ने शास्त्रीय विधि के अनुसार उन पर तथा उनकी अठारह रानियों पर पवित्र जल छिड़क कर उन्हें दीक्षा दी। वे अपनी पत्तियों से घिर कर तारों से घिरे राजसी चन्द्रमा जैसे लग रहे थे।

तात्पर्य : देवकी वसुदेव की मुख्य पत्नी (पटरानी) थीं किन्तु उनकी कई सौतें थीं जिनमें उनकी छः बहनें सम्मिलित थीं। श्रीमद्भागवत के नवम स्कन्ध में यह बात अभिलिखित है।

देवकश्चोग्रसेनश्च चत्वारो देवकात्मजाः ॥

देवानुपदेवश्च सुदेवो देववर्धनः ।

तेषां स्वसारः सप्तासन धृतदेवादयो नृप ॥

शान्तिदेवोपदेवा च श्रीदेवा देवरक्षिता ।

सहदेवा देवकी च वसुदेव उवाह ताः ॥

“आहुक के दो पुत्र थे जिनके नाम थे देवक तथा उग्रसेन। देवक के चार पुत्र हुए—देवान्, उपदेव, सुदेव तथा देववर्धन। उसके सात पुत्रियाँ भी थीं जिनके नाम थे शान्तिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा, देवकी तथा धृतदेवा। धृतदेवा सबसे बड़ी थी। कृष्ण के पिता वसुदेव ने इन सभी बहनों के साथ विवाह किया।” ( भागवत ९.२४.२१-२३ )

वसुदेव की कुछ अन्य पत्नियों का उल्लेख थोड़े-से श्लोकों के बाद ही हुआ है—

पौरवी रोहिणी भद्रा मदिरा रोचना इला ।

देवकीप्रमुखाश्वासन् पत्न्य आनकदुन्दुभेः ॥

“देवकी, पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला इत्यादि आनकदुन्दुभि (वसुदेव) की पत्नियाँ थीं। उन सबों में देवकी मुख्य थीं।” ( भागवत ९.२४.४५ )

ताभिर्दुकूलवल्लयैर्हारनूपुरकुण्डलैः ।

स्वलङ्क ताभिर्विबभौ दीक्षितोऽजिनसंवृतः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

ताभिः—उनके साथ; दुकूल—रेशमी साड़ियों के साथ; वल्लयैः—तथा चूड़ियों से; हार—गले का हार; नूपुर—पायल; कुण्डलैः—तथा कान के कुण्डलों से; सु—सुन्दर; अलङ्क ताभिः—सजी हुई; विबभौ—खूब चमक रहा था; दीक्षितः—दीक्षित होकर; अजिन—मृगचर्म से; संवृतः—आवृत, लपेटा हुआ।

वसुदेव ने अपनी पत्नियों के साथ साथ दीक्षा ग्रहण की। उनकी पत्नियाँ रेशमी साड़ियाँ पहने थीं और चूड़ियों, हारों, पायलों तथा कुण्डलों से सजी थीं। वसुदेव का शरीर मृगचर्म से लपेटा हुआ था, जिससे वे खूब शोभायमान हो रहे थे।

तस्यर्त्विजो महाराज रत्नकौशेयवाससः ।

ससदस्या विरेजुस्ते यथा वृत्रहणोऽध्वरे ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके; ऋत्विजः—पुरोहितगण; महा-राज—हे महान् राजा ( परीक्षित ); रत्न—रत्नों से; कौशेय—रेशमी; वाससः—तथा वस्त्र; स—सहित; सदस्याः—सभा के सदस्य; विरेजुः—तेजवान् प्रतीत हो रहे थे; ते—वे; यथा—मानो; वृत्र-हणः—वृत्र को मारने वाले इन्द्र के; अध्वरे—यज्ञ में।

हे महाराज परीक्षित, रेशमी धोतियाँ पहने तथा रत्नजटित आभूषणों से अलंकृत वसुदेव के पुरोहितगण तथा सभा के कार्यकर्ता सदस्य इतने तेजवान् दिख रहे थे, मानो वे वृत्र के मारने

वाले इन्द्र की यज्ञशाला में खड़े हों।

तदा रामश्च कृष्णश्च स्वैः स्वैर्बन्धुभिरन्वितौ ।

रेजतुः स्वसुतैर्दारैर्जीवेशौ स्वविभूतिभिः ॥ ५० ॥

#### शब्दार्थ

तदा—उस समय; रामः—बलराम; च—तथा; कृष्णः—कृष्ण; च—भी; स्वैः स्वैः—अपने अपने; बन्धुभिः—सम्बन्धियों से; अन्वितौ—साथ में; रेजतुः—शोभायमान हो रहे थे; स्व—अपने; सुतैः—पुत्रों के साथ; दारैः—तथा पत्नियों के साथ; जीव—सारे जीवों के; ईशौ—दोनों प्रभु; स्व-विभूतिभिः—अपने ऐश्वर्य के अंशों सहित।

उस समय समस्त जीवों के प्रभु बलराम तथा कृष्ण अपने अपने पुत्रों, पत्नियों तथा अन्य पारिवारिक सदस्यों के साथ, जो उनके ऐश्वर्य के अंशरूप थे, अत्यधिक शोभायमान हो रहे थे।

ईजेऽनुयज्ञं विधिना अग्निहोत्रादिलक्षणैः ।

प्राकृतैर्वैकृतैर्यज्ञैर्द्रव्यज्ञानक्रियेश्वरम् ॥ ५१ ॥

#### शब्दार्थ

ईजे—पूजा की; अनु-यज्ञम्—हर तरह के यज्ञ से; विधिना—समुचित नियमों के द्वारा; अग्नि-होत्र—पवित्र अग्नि में आहुतियाँ डाल कर; आदि—इत्यादि; लक्षणैः—लक्षणों से युक्त; प्राकृतैः—बिना किसी संशोधन के, श्रुति के आदेशों के सर्वथा अनुकूल; वैकृतैः—संशोधित, अन्य स्रोतों के लक्षणों के अनुसार समंजित; यज्ञैः—यज्ञों से; द्रव्य—यज्ञ की साज-सामग्री के; ज्ञान—मंत्रों के ज्ञान के; क्रिया—तथा अनुष्ठानों के; ईश्वरम्—प्रभु को।

विविध प्रकार के वैदिक यज्ञों को समुचित विधि-विधानों के अनुसार सम्पन्न करते हुए वसुदेव ने समस्त यज्ञों की साज-सामग्री सहित, मंत्रों तथा अनुष्ठानों द्वारा ईश्वर की पूजा की। उन्होंने पवित्र अग्नि में आहुतियाँ डाल कर तथा यज्ञ-पूजा के अन्य पक्षों का पालन करते हुए मुख्य तथा गौण यज्ञों को सम्पन्न किया।

तात्पर्य : वैदिक अग्नि-यज्ञों के अनेक प्रकार हैं और हर एक यज्ञ के विशद विधि-विधान हैं। वैदिक श्रुति के ब्राह्मण अंश खण्ड में केवल कुछेक विशिष्ट यज्ञों का पदशः उल्लेख मिलता है—यथा ज्योतिष्टोम तथा दर्श-पूर्णमास यज्ञ। ये प्राकृत या मूल यज्ञ कहलाते हैं। अन्य यज्ञों का विस्तृत विवरण मीमांसा शास्त्र के कड़े नियमों के अनुसार इन प्राकृत आदेशों के ही ढाँचे से प्राप्त किया जाता है। चूँकि अन्य यज्ञ प्राकृत यज्ञों के आधार पर प्राप्त किये जाते हैं इसलिए वे वैकृत अर्थात् “परिवर्तित” कहलाते हैं।

अथर्विग्भ्योऽददात्काले यथाम्नातं स दक्षिणाः ।

स्वलङ्क तेभ्योऽलङ्क त्य गोभूकन्या महाधनाः ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

अथ—तब; ऋत्विग्भ्यः—पुरोहितों को; अददात्—दिया; काले—उचित समय पर; यथा—आम्नातम्—शास्त्रों के अनुसार; सः—उसने; दक्षिणाः—धन्यवाद की भेंटें; सु-अलङ्क तेभ्यः—सुन्दर ढंग से सजाई; अलङ्क त्य—खूब सजाकर; गो—गौवें; भू—भूमि; कन्याः—तथा विवाहयोग्य कन्याएँ; महा—अत्यधिक; धनाः—मूल्यवान् ।

तब उचित समय पर तथा शास्त्रों के अनुसार वसुदेव ने पुरोहितों को मूल्यवान् आभूषणों से अलंकृत किया, यद्यपि वे पहले से सुसज्जित थे और उन्हें गौवें, भूमि तथा विवाह योग्य कन्याओं के मूल्यवान् उपहार दान में दिये ।

पत्नीसंयाजावभृथ्यैश्चरित्वा ते महर्षयः ।

सस्नु रामहृदे विप्रा यजमानपुरःसराः ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

पत्नी-संयाज—अपनी पत्नी के साथ मिलकर किया गया अनुष्ठान; अवभृथ्यैः—तथा अवभृथ्य नामक अन्तिम अनुष्ठान से; चरित्वा—सम्पन्न करके; ते—उन; महाऋषयः—महर्षियों ने; सस्नुः—स्नान किया; राम—परशुराम के; हृदे—सरोवर में; विप्राः—ब्राह्मणों ने; यजमान—यज्ञकर्ता ( वसुदेव ) को; पुरः-सराः—आगे करके ।

पत्नीसंयाज तथा अवभृथ्य अनुष्ठानों को सम्पन्न कराने के बाद महान् ब्रह्मर्षियों ने यज्ञ के कर्ता वसुदेव को आगे करके, परशुराम सरोवर में स्नान किया ।

स्नातोऽलङ्कारवासांसि वन्दिभ्योऽदात्तथा स्त्रियः ।

ततः स्वलङ्क तो वर्णानाश्चभ्योऽन्नेन पूजयत् ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ

स्नातः—स्नान किये; अलङ्कार—आभूषण; वासांसि—तथा वस्त्र; वन्दिभ्यः—वन्दीजनों को; अदात्—दिया; तथा—भी; स्त्रियः—स्त्रियाँ; ततः—तब; सु-अलङ्क तः—सुन्दर आभूषणों से युक्त; वर्णान्—सारी जातियों के लोग; आ—तक; श्वभ्यः—कुत्तों को; अन्नेन—भोजन से; पूजयत्—सम्मान किया ।

पवित्र स्नान पूरा हो जाने पर, वसुदेव ने अपनी पत्नियों के साथ साथ पेशेवर वन्दीजनों को वे आभूषण तथा वस्त्र दान में दिये, जिन्हें वे पहने हुए थे । तब वसुदेव ने नवीन वस्त्र धारण किये और उसके बाद सभी वर्णों के लोगों को, यहाँ तक कि कुत्तों को भी, भोजन कराकर सम्मानित किया ।

बन्धून्सदारान्ससुतान्पारिबर्हेण भूयसा ।

विदर्भकोशलकुरून्काशिकेकयसृञ्जयान् ॥ ५५ ॥

सदस्यत्विक्सुरगणान्भूतपितृचारणान् ।

श्रीनिकेतमनुज्ञाप्य शंसन्तः प्रययुः क्रतुम् ॥ ५६ ॥

### शब्दार्थ

बन्धून्—अपने सम्बन्धियों; स-दारान्—पत्नियों समेत; स-सुतान्—अपने पुत्रों सहित; पारिबर्हेण—भेंटों सहित; भूयसा—ऐश्वर्यवान्; विदर्भ-कोशल-कुरून्—विदर्भ, कोशल तथा कुरुवंशियों के प्रमुखों को; काशि-केकय-सृञ्जयान्—काशी, केकय तथा सृञ्जयवंशियों को भी; सदस्य—यज्ञसभा के सदस्यों; ऋत्विक्—पुरोहितों; सुर-गणान्—विविध श्रेणी के देवताओं को; नृ—मनुष्यों; भूत—भूत-पिशाचों; पितृ—पूर्वजों; चारणान्—चारणों को, जो देवताओं की क्षुद्र श्रेणी के सदस्य हैं; श्री-निकेतम्—लक्ष्मी के निवास श्रीकृष्ण से; अनुज्ञाप्य—विदा लेकर; शंसन्तः—प्रशंसा करते हुए; प्रययुः—विदा ली; क्रतुम्—यज्ञ समाप्ति की।

उन्होंने अपनी पत्नियों तथा पुत्रों सहित अपने सारे सम्बन्धियों, विदर्भ, कोशल, कुरु, काशी, केकय तथा सृञ्जय राज्यों के राजाओं, सभा के कार्यकर्ता सदस्यों तथा पुरोहितों, दर्शक देवताओं, मनुष्यों, भूत-प्रेतों, पितरों तथा चारणों को बड़ी बड़ी भेंटें दीं। तब लक्ष्मीनिवास भगवान् कृष्ण से अनुमति लेकर विविध अतिथि वसुदेव के यज्ञ की महिमा का गुणगान करते वहाँ से विदा हुए।

धृतराष्ट्रोऽनुजः पार्था भीष्मो द्रोणः पृथा यमौ ।

नारदो भगवान् व्यासः सुहृत्सम्बन्धिबान्धवाः ॥ ५७ ॥

बन्धून्परिष्वज्य यदून्सौहृदाक्लिन्नचेतसः ।

ययुर्विरहकृच्छ्रेण स्वदेशांश्चापरे जनाः ॥ ५८ ॥

### शब्दार्थ

धृतराष्ट्रः—धृतराष्ट्र; अनुजः—( धृतराष्ट्र का ) छोटा भाई ( विदुर ); पार्थाः—पृथा के पुत्र ( युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन ); भीष्मः—भीष्म; द्रोणः—द्रोण; पृथा—कुन्ती; यमौ—जुड़वाँ ( नकुल-सहदेव ); नारदः—नारद; भगवान् व्यासः—व्यासदेव; सुहृत्—मित्र; सम्बन्धि—निकट सम्बन्धीगण; बान्धवाः—तथा अन्य सम्बन्धी; बन्धून्—सम्बन्धी तथा मित्रों को; परिष्वज्य—आलिगन करके; यदून्—यदुओं को; सौहृद—मैत्री भाववश; आक्लिन्न—द्रवित; चेतसः—हृदयों वाले; ययुः—चले गये; विरह—विछोह से; कृच्छ्रेण—कठिनाई से; स्व—अपने अपने; देशान्—राज्यों को; च—भी; अपरे—अन्य; जनाः—लोग।

यदुओं के मित्रों, निकट परिवार के सदस्यों तथा अन्य सम्बन्धियों ने, जिनमें धृतराष्ट्र तथा उसके छोटे भाई विदुर, पृथा तथा उसके पुत्र, भीष्म, द्रोण, जुड़वाँ भाई नकुल एवं सहदेव, नारद तथा भगवान् व्यासदेव सम्मिलित थे, यदुओं का आलिगन किया। स्नेह से द्रवित हृदयों वाले ये तथा अन्य अतिथिगण अपने अपने राज्यों के लिए प्रस्थान कर गये, किन्तु इनकी गति विरह की पीड़ा के कारण मन्द पड़ गई थी।

नन्दस्तु सह गोपालैर्बृहत्या पूजयार्चितः ।

कृष्णारामोग्रसेनाद्यैर्न्यवात्सीद्वन्धुवत्सलः ॥ ५९ ॥

### शब्दार्थ

नन्दः—नन्द महाराज; तु—तथा; सह—साथ; गोपालैः—गवालों के; बृहत्या—विशेष रूप से ऐश्वर्यवान्; पूजया—पूजा सहित; अर्चितः—सम्मानित; कृष्ण-राम-उग्रसेन-आद्यैः—कृष्ण, बलराम, उग्रसेन तथा अन्यो द्वारा; न्यवात्सीत्—रुक गये; बन्धु—अपने सम्बन्धियों के प्रति; वत्सलः—स्नेहिल।

गवालों समेत नन्द महाराज ने अपने यदु-सम्बन्धियों के साथ वहाँ कुछ दिन और रह कर अपना स्नेह दर्शाया। उनके इस विश्राम-काल में कृष्ण, बलराम, उग्रसेन तथा अन्यो ने उनकी वृहद् ऐश्वर्ययुक्त पूजा करके उनका सम्मान किया।

वसुदेवोऽञ्जसोत्तीर्य मनोरथमहार्णवम् ।

सुहृद्गतः प्रीतमना नन्दमाह करे स्पृशन् ॥ ६० ॥

#### शब्दार्थ

वसुदेवः—वसुदेव; अञ्जसा—आसानी से; उत्तीर्य—पार करके; मनः—रथ—अपनी इच्छाओं ( यज्ञ करने की ) के; महा—विशाल; अर्णवम्—सागर को; सुहृत्—अपने शुभचिन्तकों द्वारा; वृतः—घिरे हुए; प्रीत—प्रसन्न; मनाः—अपने मन में; नन्दम्—नन्द से; आह—कहा; करे—हाथ का; स्पृशन्—स्पर्श करते हुए।

अपनी इच्छाओं रूपी विशाल सागर को इतनी आसानी से पार कर लेने पर वसुदेव को पूर्ण तुष्टि का अनुभव हुआ। उन्होंने अपने अनेक शुभचिन्तकों की संगति में उन्होंने नन्द महाराज का हाथ पकड़ कर, उनसे इस प्रकार कहा।

श्रीवसुदेव उवाच

भ्रातरीशकृतः पाशो नृनां यः स्नेहसंज्ञितः ।

तं दुस्त्यजमहं मन्ये शूराणामपि योगिनाम् ॥ ६१ ॥

#### शब्दार्थ

श्री-वसुदेवः उवाच—श्री वसुदेव ने कहा; भ्रातः—हे भाई; ईश—भगवान् द्वारा; कृतः—तैयार किया गया; पाशः—फन्दा, बन्धन; नृणाम्—मनुष्यों के; यः—जो; स्नेह—स्नेह; संज्ञितः—नामक; तम्—उसको; दुस्त्यजम्—छुड़ा पाना कठिन; अहम्—मैं; मन्ये—सोचता हूँ; शूराणाम्—वीरों के लिए; अपि—भी; योगिनाम्—तथा योगियों के लिए।

श्री वसुदेव ने कहा : हे भ्राता, स्वयं भगवान् ने स्नेह नामक गाँठ बाँधी है, जो मनुष्यों को दृढ़तापूर्वक एक-दूसरे से बाँधे रखती है। मुझे लगता है कि बड़े बड़े वीरों तथा योगियों तक को इससे छूट पाना कठिन होता है।

तात्पर्य : मनुष्यों के वीर नेता अपने क्षुद्र बन्धनों को इच्छाशक्ति से पार करने का प्रयास करते हैं, जबकि अन्तर्मुखी योगी इस कार्य के लिए ज्ञान का उपयोग करते हैं। लेकिन भगवान् की मायाशक्ति किसी भी बद्धजीव की तुलना में अधिक बलवान है। मायापति भगवान् कृष्ण की शरण ग्रहण करने से ही उस माया के प्रभाव से अप्रभावित रहा जा सकता है।

अस्मास्वप्रतिकल्पेयं यत्कृताज्ञेषु सत्तमैः ।

मैत्र्यर्पिताफला चापि न निवर्तेत कर्हिचित् ॥ ६२ ॥

**शब्दार्थ**

अस्मासु—हमारे लिए; अप्रतिकल्पा—अतुलनीय; इयम्—यह; यत्—चूँकि; कृत-अज्ञेषु—अपने ऊपर दिखाई गई दया के प्रति जो विस्मरणशील हैं; सत्-तमैः—अत्यन्त साधु-पुरुषों द्वारा; मैत्री—मित्रता; अर्पिता—अर्पित की हुई; अफला—जिससे आदान-प्रदान न हुआ हो; च अपि—यद्यपि; न निवर्तेत—रुकती नहीं; कर्हिचित्—कभी।

निस्सन्देह, भगवान् ने ही स्नेह के बन्धनों की रचना की होगी, क्योंकि आप जैसे महान् सन्तों ने कभी भी हम अकृतज्ञों के प्रति अपनी अद्वितीय मैत्री प्रदर्शित करना बन्द नहीं किया, यद्यपि इसका समुचित आदान-प्रदान नहीं हुआ।

प्रागकल्पाच्च कुशलं भ्रातर्वो नाचराम हि ।

अधुना श्रीमदान्धाक्षा न पश्यामः पुरः सतः ॥ ६३ ॥

**शब्दार्थ**

प्राक्—पूर्वकाल में; अकल्पात्—अक्षमता के कारण; च—तथा; कुशलम्—कुशलता; भ्रातः—हे भाई; वः—तुम्हारा; न आचराम—हमने माना नहीं; हि—निस्सन्देह; अधुना—अब; श्री—ऐश्वर्य; मद—नशे के कारण; अन्ध—अन्धी बन कर; अक्षाः—जिनकी आँखें; न पश्यामः—हम देख नहीं पाते; पुरः—सामने; सतः—उपस्थित, वर्तमान।

हे भ्राता, इसके पूर्व हमने आपके लाभ की कोई बात नहीं की, क्योंकि हम ऐसा करने में अशक्त थे। तो भी इस समय, यद्यपि आप हमारे समक्ष उपस्थित हैं, हमारी आँखें भौतिक सौभाग्य के मद से इस तरह अन्धी हो चुकी हैं कि हम आपकी उपेक्षा करते ही जा रहे हैं।

तात्पर्य : कंस की नृशंसता के अन्तर्गत रहते हुए वसुदेव नन्द की कुछ भी सहायता करने में असमर्थ थे और कृष्ण तथा बलराम का वध करने के लिए भेजे जाने वाले अनेक असुरों से अपनी रक्षा नन्द की प्रजा को स्वयं करनी पड़ती थी।

मा राज्यश्रीरभूत्पुंसः श्रेयस्कामस्य मानद ।

स्वजनानुत बन्धून्वा न पश्यति ययान्धृक् ॥ ६४ ॥

**शब्दार्थ**

मा—मत; राज्य—राजा की; श्रीः—लक्ष्मी; अभूत्—उदय होती है; पुंसः—एक व्यक्ति के लिए; श्रेयः—जीवन का असली लाभ; कामस्य—चाहने वाले का; मान-द—हे सम्मान प्रदान करने वाले; स्व-जनान्—अपने निकट सम्बन्धियों को; उत—भी; बन्धून्—अपने मित्रों के; वा—अथवा; न पश्यति—नहीं देखता; यया—जिस ( ऐश्वर्य ) से; अन्ध—अन्धी हुई; दृक्—दृष्टि।

हे अत्यन्त आदरणीय, ईश्वर करे कि जो व्यक्ति जीवन में सर्वोच्च लाभ प्राप्त करना चाहते हैं, वे कभी भी राजसी ऐश्वर्य प्राप्त न कर पायें, क्योंकि इससे वे अपने परिवार तथा मित्रों की

आवश्यकताओं के प्रति अंधे बन जाते हैं।

तात्पर्य : वस्तुतः यह तो वसुदेव की गहन उदारता है कि वे अपने को तुच्छ मान रहे हैं लेकिन उनके द्वारा ऐश्वर्य की जो भर्त्सना की गई है, वह सामान्यतया वैध है। इसी स्कन्ध में इसके पूर्व नारद मुनि ने स्वर्ग के कोषाध्यक्ष कुवेर के दो धनी पुत्रों—नलकूवर तथा मणिग्रीव की तीखी आलोचना की थी। गर्व तथा मदिरा के द्वारा उन्मत्त हुए वे दोनों नारद का उस समय समुचित सत्कार नहीं कर पाये, जब वे दोनों कुछ तरुणियों के साथ मन्दाकिनी नदी में नग्न-क्रीड़ा कर रहे थे और नारद उधर से गुजरे थे। उन्हें ऐसी लज्जास्पद स्थिति में देखकर नारद ने कहा—

न ह्यन्यो जुषतो जोष्यान् बुद्धिभ्रंशो रजोगुणः ।

श्रीमदाद् आभिजात्यादिर्यत्र स्त्री द्यूतमासवः ॥

“भौतिक भोग के समस्त आकर्षणों में से धन के प्रति आकर्षण ऐसा है, जो मनुष्य की बुद्धि को सुन्दर शारीरिक स्वरूप प्राप्त करने, राजसी परिवार में जन्म लेने तथा विद्वान होने से कहीं अधिक मोहित कर लेता है। जब कोई अशिक्षित होता है, किन्तु धन के कारण झूठे ही फूल कर कुप्पा हुआ रहता है, तो इसका परिणाम यह होता है कि वह अपनी सम्पत्ति को सुरा, सुन्दरी तथा द्यूत क्रीड़ा का आनन्द उठाने में लगाता है।” ( भागवत १०.१०.८ )

श्रीशुक उवाच

एवं सौहृदशैथिल्यचित्त आनकदुन्दुभिः ।

रुरोद तत्कृतां मैत्रीं स्मरन्नश्रुविलोचनः ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस तरह; सौहृद—घनिष्ठ संवेदना द्वारा; शैथिल्य—मृदु बनाये गये; चित्तः—हृदय वाले; आनकदुन्दुभिः—वसुदेव द्वारा; रुरोद—रो पड़ा; तत्—उसके ( नन्द के ) द्वारा; कृताम्—किया गया; मैत्रीम्—मित्रता के कार्य; स्मरन्—स्मरण करते हुए; अश्रु—आँसू; विलोचनः—आँखों में।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा : घनिष्ठ संवेदना के कारण हृदय द्रवित होने से वसुदेव रो पड़े।

उनके नेत्र आँसुओं से डबडबा आये, जब उन्होंने अपने प्रति प्रदर्शित नन्द की मित्रता का स्मरण किया।

नन्दस्तु सख्युः प्रियकृत्प्रेम्णा गोविन्दरामयोः ।



अद्य श्व इति मासांस्त्रीन्यदुभिर्मानितोऽवसत् ॥ ६६ ॥

### शब्दार्थ

नन्दः—नन्द; तु—तथा; सख्युः—अपने मित्रों को; प्रिय—स्नेह; कृत्—दिखलाने वाला; प्रेम्णा—प्रेमवश; गोविन्द-रामयोः—कृष्ण तथा बलराम के लिए; अद्य—आज ( देर से जाऊँगा ); श्वः—( मैं ) कल ( जाऊँगा ); इति—इस प्रकार; मासान्—महीने; त्रीन्—तीन; यदुभिः—यदुओं द्वारा; मानितः—सम्मानित; अवसत्—रहता रहा ।

नन्द भी अपने मित्र वसुदेव के प्रति स्नेह से भरपूर थे। अतः बात के दिनों में नन्द बारम्बार यही कहते, “मैं आज ही कुछ समय के बाद जाने वाला हूँ” तथा “मैं कल जाऊँगा।” किन्तु कृष्ण तथा बलराम के स्नेह के कारण, वे समस्त यदुओं द्वारा सम्मानित होकर और तीन मास तक रहते रहे।

तात्पर्य : यह निश्चित कर लेने के बाद कि वे प्रातः जायेंगे, बाद में वे निश्चित करते “मैं आज ही देर से जाऊँगा” और जब दोपहर बीत जाती तो वे कहते, “मैं कल तक रुकूँगा।” श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने उनकी इस टालमटोल का एक संभव कारण सुझाया—नन्द चुपके से कृष्ण को अपने साथ ब्रज ले जाना चाहते थे, किन्तु वसुदेव का हृदय नहीं तोड़ना चाहते थे। अनिश्चय की यह स्थिति तीन मास तक बनी रही।

ततः कामैः पूर्यमाणः सव्रजः सहबान्धवः ।  
पराध्याभरणक्षौमनानानर्घ्यपरिच्छदैः ॥ ६७ ॥  
वसुदेवोग्रसेनाभ्यां कृष्णोद्धवबलादिभिः ।  
दत्तमादाय पारिबर्हं यापितो यदुभिर्ययौ ॥ ६८ ॥

### शब्दार्थ

ततः—तब; कामैः—इच्छित वस्तुओं से; पूर्यमाणः—तृप्त; स-व्रजः—व्रजवासियों सहित; सह-बान्धवः—अपने परिवार वालों के साथ; पर—अत्यन्त; अर्घ्य—मूल्यवान्; आभरण—आभूषणों से; क्षौम—महीन मखमल; नाना—विविध; अनर्घ्य—अमूल्य; परिच्छदैः—तथा घरेलू साज-सामान से; वसुदेव-उग्रसेनाभ्याम्—वसुदेव तथा उग्रसेन द्वारा; कृष्ण-उद्धव-बल-आदिभिः—तथा कृष्ण, उद्धव, बलराम आदि के द्वारा; दत्तम्—दिया हुआ; आदाय—लेकर; पारिबर्हम्—उपहारों को; यापितः—विदा किया; यदुभिः—यदुओं द्वारा; ययौ—विदा हो गया।

जब वसुदेव, उग्रसेन, कृष्ण, उद्धव, बलराम तथा अन्य लोग नन्द की इच्छाएँ पूरी कर चुके तथा बहुमूल्य आभूषण, महीन मलमल तथा नाना प्रकार की बहुमूल्य घरेलू सामग्री भेंट कर चुके, तो नन्द महाराज ने ये सारी भेंटें स्वीकार कर लीं और सभी यदुओं से विदा ली तथा वे अपने पारिवारिक सदस्यों तथा व्रजवासियों के साथ रवाना हो गये।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार, तीन मास बाद नन्द महाराज कृष्ण के पास पहुँचे

और उनसे बोले, “हे पुत्र! तुम्हारे दिव्य मुख से बहे पसीने की एक बूँद पर मैं असंख्य जीवन देने को तैयार हूँ। अब ब्रज चलो। मैं अब एक क्षण भी यहाँ नहीं बिता सकता।” तब वे वसुदेव के पास गये और उनसे कहा, “हे मित्र! कृपया कृष्ण को ब्रज भेज दीजिये” और उग्रसेन से प्रार्थना की, “आप मेरे मित्र को ऐसा करने का आदेश दें। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे, तो मैं अपने आपको यहाँ परशुराम सरोवर में डुबो दूँगा। यदि मुझ पर विश्वास न हो तो देख ही लें। हम ब्रज के लोग यहाँ पर सूर्यग्रहण के अवसर पर शुद्धि पाने के लिए नहीं आये अपितु हम कृष्ण को वापस ले जाना चाहते हैं, अन्यथा हम मर जायेंगे।” नन्द के बौखलाए शब्द सुनकर वसुदेव तथा अन्यो ने मूल्यवान भेंटें देकर उन्हें शान्त करना चाहा।

राजनीति की कला में पटु वसुदेव ने अपने विश्वस्त सलाहकारों से सलाह ली और नन्द को यह कह कर सन्तुष्ट किया, “मेरे मित्र, हे ब्रजराज! यह सच है कि कृष्ण के बिना तुम में से कोई भी जीवित नहीं रह सकता। और हम आपको किस तरह मरने दे सकते हैं? इसलिए मुझे तो कृष्ण को किसी-न-किसी तरह ब्रज वापस भेजना ही है। जब हम उनके साथ अपने सम्बन्धियों तथा मित्रों को लेकर जिनमें अनेक निस्सहाय महिलाएँ भी होंगी, द्वारका वापस जायेंगे तो उसके बाद मैं ऐसा करूँगा। तब अगले ही दिन उन्हें किसी भी प्रकार की रुकावट न डाल कर शुभ समय पर ब्रज के लिए रवाना होने दूँगा। मैं तुमसे एक हजार बार कसमें खाकर कहता हूँ। आखिर, हम जो कि कृष्ण के साथ यहाँ आये हैं, उनके बिना घर कैसे जा सकते हैं? लोग हमारे विषय में क्या कहेंगे? आप सभी मामलों में पंडित हैं, अतएव आपसे यह अनुरोध करता हूँ। इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे।”

इसके बाद उग्रसेन ने नन्द महाराज से कहा, “हे ब्रजपति! मैं वसुदेव के कथन का साक्षी हूँ और यह प्रण करता हूँ कि यदि मुझे बल का भी प्रयोग करना पड़े तो भी मैं कृष्ण को ब्रज वापस भेजूँगा।”

तब उद्धव तथा बलराम को साथ लेकर भगवान् कृष्ण ने नन्द से एकान्त में कहा, “हे पिताश्री! यदि मैं इन वृष्णियों को छोड़ कर आज सीधे ब्रज जाता हूँ, तो वे मेरे विछोह की पीड़ा से मर जायेंगे। तब केशी तथा अरिष्ट से कहीं अधिक शक्तिशाली हजारों शत्रु इन सारे राजाओं का सफाया करने आयेंगे।

“चूँकि मैं सर्वज्ञ हूँ, अतएव मैं जानता हूँ कि मुझ पर क्या अनिवार्य रूप से घटित होने वाला है।

यदि सुनें तो मैं आपसे बतलाऊँ। द्वारका लौटने पर मुझे युधिष्ठिर से निमंत्रण प्राप्त होगा और मैं उनके राजयूय यज्ञ में सम्मिलित होने इन्द्रप्रस्थ जाऊँगा। वहाँ पर मैं शिशुपाल का वध करूँगा और फिर द्वारका लौटने पर शाल्व को मारूँगा। इसके बाद मैं मथुरा से दक्षिण स्थित स्थान की यात्रा करूँगा जहाँ पर दन्तवक्र का वध करके, मैं आपको बचाऊँगा। इसके बाद मैं ब्रज आऊँगा, अपने सारे मित्रों से मिलूँगा और फिर बड़े आनन्द से आपकी गोद से बैठूँगा। निस्सन्देह, मैं शेष जीवन आपके साथ अत्यन्त सुखपूर्वक बिताऊँगा। विधाता ने मेरे मस्तक पर यह भाग्य लिख दिया है और आपके मस्तक पर भी यह लिखा हुआ है कि जब तक मैं वापस न आऊँ तब तक आप मेरे विछोह को सहें। हममें से किसी का भी भाग्य बदल नहीं सकता, अतएव मुझे यहाँ छोड़ने तथा ब्रज जाने के लिए साहस जुटाइये।

“यदि इसी बीच, हे मेरे माता-पिता तथा हे मेरे प्रिय मित्रो! आप अपने मस्तकों पर लिखे अमित भाग्य से दुखी होते हों, तो जब भी आप लोग मुझे कोई अच्छी वस्तु खिलाना चाहें या मेरे साथ कोई क्रीड़ा करना चाहें या मेरा दर्शन करना चाहें तो अपनी आँखें बन्द कर लीजिए और मैं आपकी इच्छापूर्ति के लिए आपके सामने प्रकट हो जाऊँगा और आप के दुख को आकाश-पुष्पों में बदल कर आपकी सभी कामनाएँ पूरी कर दूँगा। मैं आपसे यह वादा करता हूँ और जंगल की अग्नि से अपने जिन युवक मित्रों की मैंने जान बचाई थी, वे इसके लिए साक्षी हैं।”

इन तर्कों से आश्चस्त होकर कि मेरे पुत्र का सुख सर्वोपरि है, नन्द ने सारी भेंटें स्वीकार कर लीं और विदा लेकर यदुओं की विशाल सेना के साथ वहाँ से चल पड़े।

नन्दो गोपास् च गोप्यश्च गोविन्दचरणाम्बुजे ।

मनः क्षिप्तं पुनर्हर्तुमनीशा मथुरां ययुः ॥ ६९ ॥

#### शब्दार्थ

नन्दः—नन्द; गोपाः—ग्वाले; च—तथा; गोप्यः—गोपियाँ; च—भी; गोविन्द—कृष्ण के; चरण-अम्बुजे—चरणकमलों पर; मनः—उनके मन; क्षिप्तम्—फेंके हुए; पुनः—फिर; हर्तुम्—दूर करने के लिए; अनीशाः—असमर्थ; मथुराम्—मथुरा; ययुः—चले गये।

भगवान् गोविन्द के चरणकमलों पर समर्पित अपने मन को वहाँ से विलग कर पाने में असमर्थ नन्द तथा ग्वाल-ग्वालिनें मथुरा लौट गए।

बन्धुषु प्रतियातेषु वृष्णयः कृष्णदेवताः ।  
वीक्ष्य प्रावृषमासन्नाद्यद्वारवतीं पुनः ॥ ७० ॥

**शब्दार्थ**

बन्धुषु—अपने सम्बन्धियों से; प्रतियातेषु—विदा होकर; वृष्णयः—वृष्णिजन; कृष्ण-देवताः—जिनके आराध्यदेव कृष्ण थे;  
वीक्ष्य—देखकर; प्रावृषम्—वर्षाऋतु; आसन्नात्—सन्निकट; ययुः—गये; द्वारवतीम्—द्वारका; पुनः—फिर ।

इस तरह जब उनके सम्बन्धी विदा हो चुके और जब उन्होंने वर्षाऋतु को निकट आते देखा,

तो वृष्णिजन, जिनके एकमात्र स्वामी कृष्ण थे, द्वारका वापस चले गये।

जनेभ्यः कथयां चक्रुर्यदुदेवमहोत्सवम् ।  
यदासीत्तीर्थयात्रायां सुहृत्सन्दर्शनादिकम् ॥ ७१ ॥

**शब्दार्थ**

जनेभ्यः—लोगों को; कथयाम् चक्रुः—कह सुनाया; यदु-देव—यदुओं के स्वामी वसुदेव का; महा-उत्सवम्—महान् उत्सव;  
यत्—जो; आसीत्—घटना घटी; तीर्थ-यात्रायाम्—तीर्थयात्रा के दौरान; सुहृत्—मित्रों के; सन्दर्शन—दर्शन करने;  
आदिकम्—इत्यादि ।

उन्होंने नगर के लोगों को यदुओं के स्वामी वसुदेव द्वारा सम्पन्न यज्ञोत्सवों के बारे में तथा उनकी तीर्थयात्रा के दौरान, जो भी घटनाएँ घटी थीं, विशेष रूप से, जिस तरह वे अपने प्रियजनों से मिले, इन सबके बारे में कह सुनाया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत “कुरुक्षेत्र में ऋषियों के उपदेश” नामक चौरासिवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।